२६
—[illegible]

वक्तव्य ।

प्रिय पाठकवृन्द ! आज तक जितने प्राचीन ग्रन्थकार, निबन्धकार, टीकाकार और अनुवादकों ने जो अपनी २ रचना द्वारा अपनी बुद्धि पाटव दर्शाये हैं उनकी रचनाओं का एक विशेष कारण अवश्य पाया गया है। क्योंकि "कारणं विनामन्देऽपि न प्रवर्तते" यद्यपि उन अगाध विद्वानों के गम्भीर और विद्वत्तापूर्ण लेखों तथा उत्तमोत्तम रचनाओं से और इस तुच्छातितुच्छानुवाद से पृथ्वी और आकाश जैसा अन्तर है क्योंकि मैं ही उन महापुरुषों के सन्मुख "कोटिस्तु कीटायते" के सदृश हूं तो मेरी कृति का भी वैसाही अथवा उस से भी अधिक अन्तरित होना यथार्थ है। दूसरा कारण एक और भी है कि यह मेरा प्रथम साहस है कि "पिपीलिकाचुम्बतिचन्द्रबिम्बम्" इस वाक्य को चरितार्थ किया है। तो भी आशा करता हूं कि सुजन पाठकवृन्द इस अनुवाद को भी इसकी कोई विशेष आवश्यकता समझकर और नहीं तो मेरी भयभीत आशा को भविष्य के लिए निडर बनाने ही के हेतु अपनायेंगे।

इस ग्रन्थ के अनुवाद का हेतु यह है कि सन् १९२१ ईस्वी में जब कोलायत तक रेल का मार्ग निर्मित होगया और यह भी सूचना होचुकी कि इस वर्ष की कार्तिकी पूर्णिमा से पहिले ही यात्रियों के सुभीते के लिये कोलायत तक रेल जाने लग जायगी तो मुझे जहांतक स्मरण आता है कि आषाढ़ श्रावण के महीनों में कभी हमारे जीवनाधार श्री १०८ श्री अन्नदाताजी ने कोलायत के विषय में—यह स्थान कैसे और कबसे प्रसिद्ध हुआ तथा इसका नाम कोलायत क्यों रखा गया एवं इसका क्या माहात्म्य है और इसमें शास्त्री प्रमाण क्या है इत्यादि प्रश्न उठाये। उपरोक्त प्रश्न से उस समय मेरा कोई सम्बन्ध नहीं था, ये प्रश्न राजपण्डितों से हुए थे, जिसका उत्तर राजपंडित

मधुसूदनजी तथा गोस्वामी पण्डित श्री नगसिंहलाल
भी और उस उत्तरपत्र में गया था ! सो देखने से मैं
परन्तु इस प्रश्न को सुनते ही मेरी उत्कण्ठा हुई कि मैं
का अन्वेषण करूं, यद्यपि मैं ज्योतिषी हूं. मेरा
यथा कि पुराण धर्मशास्त्र आदि गहन और
के किनारे भी जासकूं, इसी चिन्ता में निमग्न हो
तत्काल ही गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी का एक दोहा
गया "नहिं विद्या नहिं बाहुबल, नहिं गांठी का दाम । मे
पतंग की, पति राखहु श्रीराम" इसके स्मरण आते ही मेरे
शान्ति के साथ एक आशा का संचार हो गया तदनन्तर ए
वर पण्डित यमुनादासजी श्रीलालगढ़ में मिले और उनके ह
चीन और हस्तलिखित खुले पत्रों की एक पुस्तिका दीख पड़ी
विषय में पूछा तो उन्होंने कपिलायतनमाहात्य उसका नाम बताय
१०८ अन्नदाताजी ने अमुकामुक प्रश्न किये हैं उन्हीं के उ
के लिये.यह पुस्तक लाया हूं, यह उत्तर दिया, तदनन्तर उ
को एक वार आद्योपान्त पढ़ने के लिये मैंने उन से प्रार्थना की औ
र्थना स्वीकार करके उन्होंने पुस्तक देदिया पुस्तक पढ़जाने
हुई कि इस पुस्तक का सरल हिन्दी भाषा में अनुवाद करूं
सर्वसाधारण को श्रीकोलायतजी का विषय पूर्णतया अवगत हो
अपने दो एक मित्रों की सम्मति भी ली तो उन्होंने हिन्
वाद के वास्ते पूरा जोर दिया और मैंने लिखना भी आरम्भ
जब लगभग दो अध्याय तक लिख चुका तो एक रोज उसका
ही कर रहा था इतने में मेरे परमहितैषी आयुर्वेदभूषण पण्
जीवनरामजी हर्ष का अकस्मात् शुभागमन होगया और उन्हे
कर पूछा और इसकी समस्त कथा समझाने पर दुबारा उन
को देखा तथा अपनी हार्दिक प्रसन्नता प्रगट कर तावन्मात्र ह

वाद की समालोचना उन्होंने की और स्थल २ में कुछ रदबदल करने की भी अपनी सम्मति प्रकट की और वैसा ही मैंने कर भी दिया फिर उन्होंने संस्कृत टीका लिखने की भी सम्मति दी तब से जब २ संयोगवश वह मिलते थे तब तब इस का समाचार पूछते और मेरी सुस्ती पर मुझे बहुत लज्जित किया करते थे तो भी इस ग्रन्थ की परिसमाप्ति में बहुत विलम्ब हुआ और मित्रों ने समय २ पर अतिशय भर्त्सना की तो भी मेरे सहचर और बालसखा आलस्यदेव ने कुछ परवाह न कर अपनी ही गति से मुझे चलाता रहा एवं "दिनभर चले अढ़ाई कोश" की कहावत को मैं चरितार्थ करता हुआ इसी विक्रमी सम्वत् १९८१ के श्रावण शुक्ला एकादशी सोमवार के प्रातःकाल में इस पुस्तक की समाप्ति लगभग दो वर्षों में करसका और समाप्त होते ही मेरे परमप्रेमभाजन बन्धुवर श्रीकृष्णदासजी हर्ष ने इसको छपवादेने के लिए प्रेरणा की और उक्त मेरे परमहितैषी श्रीमान् आयुर्वेदभूषण पण्डित जीवनरामजी हर्ष ने अपने श्री केवल जीवनानन्द प्रेस में छपाने की भी अनुमति देदी। मैं उक्त सज्जनों की कृपा पूर्ण सम्मति से प्रेरित एवं सदुत्साहित होकर उक्त कार्य का आरंभ या उसके आद्योपान्त सम्पादन कर सकने में साहसवान हुआ हूं बस यही मेरा वक्तव्य है।

यह भी आशा करता हूं कि सभी परमोदार सज्जन इसी प्रकार अपनी महत्वपूर्ण सात्विकवृत्ति से मेरी इस तुच्छ भेंट को धार्मिक एवं विद्याप्रेम के नाते अपनाकर कृतार्थ करेंगे। किमधिकम्विज्ञेष्विति।

बीकानेर,
सं० १९८१ कार्तिक शुक्ला ११

विष्णुदत्तः।

पं यमुनादासजी तथा गोस्वामी पण्डित श्री नरसिंहदासजी ने कि
थी और उस उत्तरपत्र में क्या था? सो देखने से मैं वंचित ही र
परन्तु इस प्रश्न को सुनते ही मेरी उत्कण्ठा हुई कि मैं भी इन वि
का अन्वेषण करूं, यद्यपि मैं ज्योतिषी हूं, मेरा अधिकार है
तथा कि पुराण धर्मशास्त्र आदि गहन और अगाध समु
के किनारे भी जासकूं, इसी चिन्ता में निमग्न हो रहा था कि
तत्काल ही गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी का एक दोहा स्मरण हो
गया "नहिं विद्या नहिं बाहुबल, नहिं गांठी का दाम। मों सो पतित
पतंग की, पति राखहु श्रीराम" इसके स्मरण आते ही मेरे मन में अपूर्व
शान्ति के साथ एक आशा का संचार हो गया तदनन्तर एक रोज मित्र
वर पण्डित यमुनादासजी श्रीलालगढ़ में मिले और उनके हाथ में प्रा-
चीन और हस्तलिखित खुले पत्रों की एक पुस्तिका दीख पड़ी मैंने उसके
विषय में पूछा तो उन्होंने कपिलायतनमाहात्म्य उसका नाम बताया और श्री
१०८ अन्नदाताजी ने अमुकामुक प्रश्न किये हैं उन्हीं के उत्तर ढूंढने
के लिये यह पुस्तक लाया हूं, यह उत्तर दिया, तदनन्तर उस पुस्तक
को एक वार आद्योपान्त पढ़ने के लिये मैंने उन से प्रार्थना की और मेरी प्रा-
र्थना स्वीकार करके उन्होंने पुस्तक देदिया पुस्तक पढ़जाने पर इच्छा
हुई कि इस पुस्तक का सरल हिन्दी भाषा में अनुवाद करूं जिस में
सर्वसाधारण को श्रीकोलायतजी का विषय पूर्णतया अवगत होजाय और
अपने दो एक मित्रों की सम्मति भी ली तो उन्होंने हिन्दी अनु-
वाद के वास्ते पूरा जोर दिया और मैंने लिखना भी आरम्भ करदिया.
जब लगभग दो अध्याय तक लिख चुका तो एक रोज उसका अनुवाद
ही कर रहा था इतने में मेरे परमहितैषी आयुर्वेदभूषण
जीवनरामजी दूगड़ का अकस्मात् शुभागमन हु
कर पूछा और इसकी समस्त कथा
तो देखा तथा अपनी हार्दिक

शुद्धाऽशुद्धपङ्क्तयः



अशुद्धयः	शुद्धयः	पृष्ठ	पंक्ति
महात्म्य	माहात्म्य	१	१२
तमोमतम्	तमोत्तमम्	१	१८
किंचिद्दोप्यम्	किञ्चिद्दोप्यम्	४	५
श्लोका	श्लोकाः	५	३
वशिष्ठ	वसिष्ठ	७	७
,,	,,	,,	१०
यदुःखं	यद्दुःखं	२०	१७
म्रा	भ्रा	२१	५
साहसै	साहसैः	२२	४
स्र	स्न	,,	७
धो	धो	,,	१२
रु	रू	२४	१९
मेकरम्मि	मेकम्मि	५८	३
गृहानान्तु	गृहाणान्तु	६१	३
गृहायोन्ति	गृहायान्ति	६१	१६
माप्तानन्तरम्	माप्त्यनन्तरम्	६२	१
स्तत्कल एव	स्तत्काल एव	,,	२४
सघात कारिणि	सङ्घात कारिणि	७०	१०
महापाक	महापातक	७२	१३
महांश्चासौ	महान्तश्चते	,,	१५
नागृह्णाना	नामगृह्णाना	७३	१९

शुद्धाऽशुद्धपङ्क्तयः।



अशुद्धयः	शुद्धयः	पृष्ठ	पंक्ति
महात्म्य	माहात्म्य	१	१३
तमोमतम्	तमोत्तमम्	१	१८
किंचिद्द्रोप्यम्	किञ्चिद्द्रोप्यम्	४	५
श्लोका	श्लोकाः	५	३
वशिष्ठ	वसिष्ठ	७	७
,,	,,	,,	१०
यदुःखं	यद्दुःखं	२०	१७
म्रा	म्रा	२१	५
साहस्त्र	साहस्रः	२२	४
स्त्र	स्र	,,	७
ध्रो	ध्रो	,,	१२
रु	रू	२४	१९
मेकरम्मि	मेरूम्मि	५८	३
गृहानान्तु	गृहाणान्तु	६१	३
गृहायोन्ति	गृहायान्ति	६१	१६
प्राप्तानन्तरम्	प्राप्त्यनन्तरम्	६२	९
स्तत्कल एव	स्तत्काल एव	,,	२४
सघात कारिणि	सङ्घात कारिणि	७०	१०
महापाक	महापातक	७२	१३
महांश्चासौ	महान्तश्चते	,,	१५
नागृह्णाना	नामगृह्णाना	७३	१९

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठ	पंक्ति
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
,,	,,	,,	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	८४	[illegible]
[illegible]	[illegible]	८१	[illegible]
[illegible]	[illegible]	८३	[illegible]
[illegible]	[illegible]	८६	[illegible]
[illegible]	[illegible]	९०	[illegible]
,,	,,	९३	
,,	,,	,,	[illegible]
,,	,,	,,	[illegible]
[illegible]	[illegible]	,,	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	९७	[illegible]
,,	,,	९७	[illegible]
,,	,,	९८	[illegible]
[illegible]	[illegible]	९९	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	११२	[illegible]
[illegible]	[illegible]	११४	[illegible]
[illegible]	[illegible]	११६	[illegible]

अशुद्धयः	शुद्धयः	पृष्ठ	पंक्ति
अमन्ला	अमलाः	११८	११
धर्मपत्न्या	धर्मपत्न्यां	१२२	२२
तीर्थफलक्तं	तीर्थफलमुक्तं	१२४	४
सस्तुवतः	संस्तुवतः	१२८	१
ध्वान्तनाशन	ध्वान्तनाशनः	१२८	२
प्रसादत्त	प्रसादतो	१२८	५
हृदयान्धकरोनष्ट	हृदयांधकारोनष्टः	१२८	५
जिसको शास्त्रोंमेंलिखाहैवह इसमें "वह" नही चाहिए		१२६	१३
स्वाश	स्वास	१३३	२३
विपरूप	विषयरूप	१३८	४
योगिन	योगिजन	,,	४
मनङ्काः	मनस्शङ्का	१४२	७
शुमदेवने	शम्भुदेवने	१४३	१०
तत्राशु	तस्याशु	१४३	१४
प्रीत्यर्थ	प्रीत्यर्थं	,,	१६
कोठि	कोटि	१४४	१५

पृष्ठ १०६ श्लोक ४० में "पादाधानः श्लिष्टपादः" यह "पादाधानश्लिष्टपादः" ऐसा होना चाहिए, जिसका अर्थ रकाव (पांवडे) में पैर लगाया हुआ।

पण्डित जयराम शास्त्री,
सँ० प्र० अध्यापक,
श्री डूंगरकालेज, बीकानेर।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ स्कन्द पुराणान्तर्गत रेवाखण्डीय

कपिलायतनतीर्थमाहात्म्यं

लिख्यते



॥ तत्रतावन्मंगलाचरणम् ॥

महेशानं महेशानतनूजं मनुजार्चितम्।
नमामि विघ्नहर्तारं कर्तारं सर्वसम्पदाम्॥ १ ॥

श्रीकपिलायतनमाहात्म्यरचयिता पुराणकर्ता व्यासदेवः म गणेशं स्तौति महेशानमिति-

महेशानतनूजं महेशानश्शङ्करस्तस्यतनूजं महादेवात मनुजार्चितम्मनुजैरर्चितम्पूजितं विघ्नहर्तारं विघ्नविनाशनं सर्वसम् कर्तारं महेशानं गणेशं नमामि नमस्करोमि ॥ १ ॥

श्री कपिलायतन महात्म्य के रचयिता पुराणकर्ता व्यास " प्रथम गणेशजी की स्तुति करते हैं "-

महेशान शंकरजी के पुत्र, मनुष्यों से पूजित, विघ्नों के हर्ता सर्वसम्पत्तियों के कर्ता महेशान गणेशजी को नमस्कार करता हूं ॥

(सूत उवाच)

गंगा माहात्म्य मतुलं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्।
श्रुत्वा-महर्षमगमदगस्त्योमुनिसत्तमः ॥ २ ॥

सूतश्शौनकादीन् स्वश्रोतृन्प्रतिवदति यत्- मुनिम मुनिश्रेष्ठोऽगस्त्यस्सर्वतीर्थोत्तमोत्तममतुलमनुपमं गंगामाहात्म्यं श्रु महर्षमगमत् ॥ २ ॥

सूतजी शौनकादि ऋषियों से कहते हैं कि मुनिये
अगस्त्यमुनि पूर्वकथा में अनुराग और सब तीर्थों से उत्तम
माहात्म्य को स्कन्ददेव से सुनकर बहुत प्रसन्न हुए ॥ २ ॥

पुनः पप्रच्छ विनयात्तनयं प्रणयान्वित
शूलिनस्सर्वतत्वज्ञं स्कन्दं देवारिकंदनम् ॥

प्रणयान्वितोविनयान्नम्रीभूतोऽगस्त्यस्सर्वतत्वज्ञं सर्व
देवारिकन्दनं शूलिनश्शंकरस्य तनयं स्कन्दाम्विनयात्पुनः पप्रच्छ

अगस्तजी ने विनीत भाव के साथ नम्र होकर सर्व
जाननेवाले तथा देवारिकन्दन (तारकासुर के वध करनेवाले)
के पुत्र स्कन्ददेव से पुनः प्रश्न किया ॥ ३ ॥

भगवन्सर्वधर्म्मज्ञ ! सर्वज्ञसुत ! मत्प्रभो !
गंगामाहात्म्यकथनात्पावितोहं न संशयः ॥

अस्मिन्पद्ये पूर्वार्द्धस्य पदचतुष्टयं स्कन्दस्य सम्
भगवनित्यादितोमत्प्रभो ! पर्य्यन्तम् उत्तरार्द्धेनागस्त्यः किंचि
कथयति यत्तव गंगामाहात्म्यकथनादहं पावितः प
स्मि न संशयः ॥ ४ ॥

अगस्त्यजी ने कहा कि हे भगवन् ! हे सब धर्म के
वाले ! हे शंकरजी के पुत्र ! और मेरे प्रभु ! आपके गंगा म
के कथन से मैं पवित्र होगया इस में सन्देह नहीं है ॥ ४ ॥

गंगा तु सर्वलोकेषु वेदेषुच महामते ! ॥
प्रसिद्धिमागता नित्यं सर्व्वे जानन्ति सत्तमाः ।

हे महामते ! गंगा तु सर्व लोकेषु वेदेषु वेदचतुष्टयेषुच
प्रसिद्धिमागतेतिसर्वे सत्तमा निपुणा नित्यं निरन्तरजानन्ति ॥ ५

(१) देव [illegible] देवशत्रवस्तान्कृन्ततीति कथ
[illegible]

हे महामते ! गंगा तो सब लोकों में और वेदों में प्रसिद्ध
चुकी है यह सभी सत्पुरुष जानते हैं ॥ ५ ॥

आस्त्री बालकगोपालंगंगामाहात्म्यमुत्तमम् ॥
प्रकटं सुरसेनानीर्जागर्ति भुवनत्रये ॥ ६ ॥

हे सुरसेनानीः ! आस्त्रीबालकगोपालं स्त्रियमारभ्यबाल
गोपालपर्य्यन्तम् । उत्तमंगंगामाहात्म्यं भुवनत्रयेप्रकटं प्रत्यक्षं जाग
स्त्रियोबालका गोपालाश्च सर्वे जानन्तीतिभावः अत्र गोपालशब्द
आभीर वाचकः ग्वालाइति भाषायां । आभीरस्तु शूद्रवर्णोभवति
एतेऽपि जानन्ति किमन्येषामिति ॥ ६ ॥

हे स्कन्ददेव ! इस त्रिभुवन में स्त्री, बालक तथा गोपाल पर्य्य
सभी इस उत्तम गंगा माहात्म्य को प्रत्यक्षरूप से जानते हैं । यद्य
इस बात को सभी जानते हैं कि शास्त्रों में स्त्रियों को, बालकों
और शूद्रों को किसी तीर्थ या नदी के माहात्म्य जानने का अधिक
नहीं है, तथापि इस कथन से गंगा माहात्म्य की प्रधानता विशेष
से सूचित हो रही है ॥ ६ ॥

अनन्तचरणाम्भोजप्रसूतागा भवच्छिदः ॥
रिङ्गत्तुङ्गतरंगायाः श्रीकपर्दे कपर्दिनः ॥ ७ ॥

महापापौघविध्वंसपटीयस्याः परन्तप ॥
कोन जानाति गंगाया माहात्म्यम्परमाद्भुतम् ॥ ८

हे परन्तप ! कपर्दिनश्शंकरस्य श्रीकपर्दे जटाजूटे रिङ्गन्तीच
तुङ्गतरङ्गाच रिङ्गत्तुङ्गतरङ्गा, तस्याः अनन्तचरणाम्भोजप्रसूत
महापापौघविध्वंसपटीयस्याः भवच्छिदोगङ्गायाः परमाद्भुतम्परमाश्च
कम्माहात्म्यं को न जानाति ॥ ७, ८ ॥

हे [illegible]! [illegible] के [illegible] मैं [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] और [illegible] के [illegible] हुई [illegible] के [illegible] नहीं [illegible] है ॥ ७, ८ ॥

अधुना श्रोतुमिच्छामि किंचिच्छ्रेष्ठतमं मनोगतम् ॥
सर्वलोकहितं देव! ममापि परमाद्भुतम् ॥ ९ ॥

हे देव! अधुना सर्वलोकहितम् ममापि परमाद्भुतम् [illegible] मनोगतं किंचिच्छ्रेष्ठं श्रोतुमिच्छामि ॥ ९ ॥

हे देव! इस समय सर्वलोक हितकारी और मेरे लिये परम आश्चर्यकारी कोई मनोगत गुप्त कथा हो तो कहिये, यही सुनने की इच्छा होती है ॥ ९ ॥

किन्तु तीर्थं भवेदत्र सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥
जनैरमर्त्यैरविज्ञातं स्याद्देशगतमेव हि ॥ १० ॥
सर्वपापहरं पुण्यं सर्वयज्ञफलप्रदम् ॥
सर्वत्र सुखदं देव! भोगिभोगप्रदं शुचि ॥ ११ ॥
सकामानान्तथान्येषां कामनापरिपूरकम् ॥
निष्कामानाम्पुनर्विद्वन्! ज्ञानमुत्पाद्य मुक्तिदम् ॥ १२ ॥
स्वर्गदं सुष्ठुबुद्धीनां पापिनां पापनाशनम् ॥
सद्यः प्रत्ययकृल्लोके मर्त्यानां स्थूल चक्षुषाम् ॥ १३ ॥
प्रेतयोनिगतानां यन्मुक्तिदं भवसागरे ॥
दिव्य लोक प्रदं दिव्यं दिव्यमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ १४ ॥
दिव्यदेवाधिष्ठितं तत्तीर्थं तीर्थवरंपरम् ॥
यथा कथाऽपि क्रियया मोचकं शोकनाशकम् ॥ १५ ॥

तदहं श्रोतुमिच्छामि त्वन्मुखात्सुरसत्तम॥
नाज्ञातं विद्यते किञ्चित्सर्वज्ञाननिधेस्तव॥ १६॥

(सरलार्थाइमे श्लोकाः)

हे देव! हे विद्वन्! हे सुरसत्तम! इस संसार में ऐसा कोई तीर्थ हो जो सब तीर्थों का फल देनेवाला हो, मनुष्यों से अज्ञात हो, आप सदृश महात्मा ही उसको जानते हो, वह सब पापों का हारक तथा पवित्र और सब यज्ञों का फल देनेवाला हो, सकाम सेवन करनेवाले मनुष्यों की कामनाओं को परिपूर्ण करता हो, और निष्काम सेवन करनेवालों को ज्ञान देकर मुक्त करता हो, सुबुद्धियों को स्वर्ग देता हो, पापियों के पाप नाश करता हो, और स्थूल दृष्टि से देखनेवाले मनुष्यों को इस लोक में तत्काल परिचय देनेवाला हो तथा प्रेतयोनि में गये मनुष्य को भी भवसागर से मुक्त करनेवाला एवं दिव्य लोक देनेवाला, दिव्य महात्म्य से युक्त, और दिव्य देवताओं से सेवित हो और सर्व तीर्थों में श्रेष्ठ हो एवं जिस किसी क्रिया से भी संसार बन्धन का मोचक और शोकनाशक हो उस तीर्थ को आपके मुख से सुनना चाहता हूं। आप सम्पूर्ण ज्ञान के निधि हैं आप से कोई वस्तु अज्ञात नहीं है॥ १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६॥

यद्यस्ति मयि ते पूर्णा करुणा करुणानिधे!,॥
प्रब्रूहि प्रविनाशाय, महासेन! महैनसाम्॥ १७॥

हे! करुणानिधे! महासेन! यदि, ते तव, मयि विषये, पूर्णाकरुणास्ति, तदा महैनसां महापापानां प्रविनाशाय, प्रब्रूहि, कथय, गंगामाहात्म्यमिति, पूर्वश्लोकात्संबन्धः॥ १७॥

हे करुणानिधि ! महामेन ! यदि आपकी मेरे ऊपर पूर्ण कृपा
तो महापापों के विनाश के हेतु गंगामाहात्म्य को कहिये ॥ १७ ॥

(सूत उवाच)

ति प्रश्नेन संहृष्टः पार्वतीनन्दनस्तदा ॥
वाच वचनं चारु प्रहस्य श्रूयतामिति ॥ १८ ॥

सूतः शौनकादीन्कथयति यदेवमगस्त्यादिप्रश्नेन स हृष्टः
तावाप्तः पार्वतीनन्दनस्तस्मिन्काले प्रहस्य विहस्य श्रूयतामिति
वचनमुवाच ॥ १८ ॥

सूतजी ने शौनकादिक ऋषियों से कहा, कि इस तरह
जी के प्रश्न को सुन पार्वतीनन्दन स्कन्दजी प्रसन्न हुवे और
म (सुनो) इस रुचिर वचन को बोले ॥ १८ ॥

! जगद्धितं पृष्टं तद्विद्धैकमना भव ॥
याम्यहं तव प्रीत्यानान्यथानतथंचन ॥ १९ ॥

हे मुने ! त्वया जगद्धितं पृष्टं तत्तस्मात्कारणादिदैकमना-
चित्तो भव, तव प्रीत्याऽयहं वदामि तत्कंथमन्यथानेति ॥ १९ ॥

हे मुनि ! तुम सावधान होकर सुनो तुमने जो संसार के हित
से प्रश्न किया है उसका उत्तर तुम्हारे प्रेम के कारण जो
वह कभी अन्यथा नहीं हो सकता ॥ १९ ॥

न्यं यन्न प्रकाशयन्ति दिवि वेदविदाम्बराम् ॥
ापि वच्मि ललितं तव शीलादृशौवद ॥ २० ॥

हे वशम्वद ! प्रिय वादिन् ! यद्गोप्य गोपनीयमपरगु तत्र प्रकाशय-
ादिवेदाम्वरमन्ति तथापि तव शीलात् ललित सुन्दरं यथास्यात्तथाहं
कथयामि ॥ २० ॥

हे वशंवद! जो गोप्य वस्तु है उसको कभी प्रकाश नहीं करना ाहिये यह वेद जाननेवालों का सम्प्रदाय है, तौ भी तुम्हारे सौजन्यवश न्दरता से उस गुप्त कथा को कहता हूं॥ २०॥

संभवेदिहसंप्रीतिर्वक्तुः श्रोतरिसत्तमे॥
अरुन्धतीधवस्येव जानकीपतिभूपतौ॥ २१॥

इहास्मिन् गुप्तकथासंभाषणे जानकीपतिभूपतौ श्रीरामचन्द्रे, रुन्धतीधवस्य वशिष्ठस्य इव श्रोतरि सत्तमे वक्तुःसंप्रीतिः संभवेत् कांक्षितास्ति॥ २१॥

इस गुप्त कथा के संभाषण में श्रोता और वक्ता का प्रेम वैसाही ा चाहिये जैसा राजा श्रीरामचन्द्रजी में वशिष्ठजी का था॥ २१॥

यं भागवतीसृष्टिर्यस्याः पारोनाविद्यते॥
त्र कुत्राऽपि वसुधा तत्तद्रत्नधरा धरा॥ २२॥

इयं भागवती सृष्टिः यस्याः पारः अन्तं न विद्यते, अस्यां सृष्टौ पृथ्वी यत्रकुत्राऽपि तत्तद्रत्नमाधारत्नधरास्ति तानि तानि रत्नानि ति तत्तद्रत्नधरेति,॥ २२॥

यह वैष्णवी सृष्टि है जिसका अन्त नहीं है इस सृष्टि में पृथ्वी तहां जिन जिन रत्नों को धारण करनी है उनके नाम आगे ये हैं॥ २२॥

ापि नारीरत्नानि नररत्नानि कुत्रचित्॥
चिद्वाजिरत्नानि गजरत्नानि कुत्रचित्॥ २३॥

ःथिव्यां कुत्रापि नारीरत्नानि स्त्रीरत्नानि सन्ति कुत्रापि नररत्नानि कुत्रचिद्वाजिरत्नानि अश्वरत्नानि सन्ति कुत्रचिद्गजरत्नानि ।२३॥

पृथ्वी [illegible] हैं, कहीं पुष्प रत्न हैं, कहीं धातु रत्न हैं [illegible] ॥ २३ ॥

बहुरत्नायां धरायां तीर्थरत्नानि सन्ति हि ॥
अतोऽहं सम्प्रवक्ष्यामि तीर्थरत्नं परात्परम् ॥ २४ ॥

बहुरत्नायां धरायां हि तस्मात्तीर्थरत्नानि सन्ति अतः परात्परं श्रेष्ठतीर्थं तीर्थरत्नं ते तुभ्यमहं प्रवक्ष्यामि ॥ २४ ॥

इस बहुरत्ना पृथ्वी में तीर्थ रत्न भी हैं इस कारण श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ तीर्थरत्नों को तुम से कहता हूं ॥ २४ ॥

प्रयागादीनि तीर्थानि रत्नभूतानि भूतले ॥
तेष्वपीह परं रत्नं तीर्थमेकं प्रशस्यते ॥ २५ ॥

इह भूतले जगतीतले प्रयागादीनि तीर्थानि रत्नभूतानि सन्ति तेषु अपि परमुत्कृष्टं रत्नमेकंतीर्थं प्रशस्यते प्रशस्तमस्ति यदग्रेवक्ष्यति ॥ २५ ॥

इस पृथ्वी में प्रयाग आदि तीर्थ तीर्थों में रत्न है उनमें भी परम उत्कृष्ट एक तीर्थ रत्न है जो आगे कहेंगे ॥ २५ ॥

पञ्चाशत्कोटिविस्तारं भूमण्डलमिदंस्मृतम् ॥
तत्रापि लोकेविस्तीर्णेन्तम एव प्रवर्त्तते ॥ २६ ॥

इह भूमण्डलं पंचाशत्कोटिविस्तारमर्थात्पंचाशत्कोटि योजनायतमस्ति, एतदर्थं श्रीमद्भागवतस्य पञ्चमस्कन्धे भूगोल वर्णनं द्रष्टव्यम्। तत्रापि एतावद्विस्तृते लोकेपि विस्तीर्णे अधिकं तम अन्धकार एव प्रवर्तते ॥ २६ ॥

इस भूमण्डल का पचास कोटि योजन का विस्तार है, उसमें भी संसार के अधिक भाग में अन्धकार ही है पौराणिक भूगोल का वर्णन श्रीमद्भागवत के पंचम स्कन्ध में पूर्ण रीति से व्यासजी ने किया है ॥ २६ ॥

लोके प्रकाशो बहुलो यत्र सृष्टिः प्रवर्तिता ॥
तत्रापि महतीभूमिर्महास्वर्णमयी स्थिता ॥ २७ ॥

लोके यत्र सृष्टिः प्रवर्तिता यावन्मात्रं सृष्टिर्वर्तते । तत्र सूर्याचन्द्रमसोनिरन्तरगमनेन बहुलः प्रकाशोस्ति तत्रापि प्रकाशभूमावपि महती भूमिर्महास्वर्णमयी स्थिताऽस्ति ॥ २७ ॥

संसार में जहांतक सृष्टि है वहां तक पूर्ण प्रकाश है उसमें भी अधिकतम भूमि भाग अनेक रत्नों से भरा है, जिसको महास्वर्णमयी भूमि कहते हैं ॥ २७ ॥

तत्र मध्यप्रदेशेषु सप्तद्वीपवती मही ॥
तेषु द्वीपेषुच महान् जम्बूद्वीपो विशिष्यते ॥ २८ ॥

तत्र तस्यां महास्वर्णमय्याम्भूमौ मध्यप्रदेशेषु सप्तद्वीपवती सप्तद्वीपाभिधाना मह्यस्ति तेषु द्वीपेषु सुमहान् जम्बूद्वीपो विशिष्यते समस्तद्वीपेषु जम्बूद्वीपो विशिष्ट इति ॥ २८ ॥

उस स्वर्णमयी भूमि के मध्यप्रदेशों में द्वीपात्मक सात विभागों से पृथ्वी विभक्त है, उन विभागों में सब से प्रधान और वृहदाकार जम्बूद्वीप है ॥ २८ ॥

तद्द्वीपे नवखण्डानि भारतादीनि सत्तम ॥
भारतं पुण्यमेतेषु कर्मक्षेत्रं यतस्स्मृतम् ॥ २९ ॥

हे सत्तम ! तज्जम्बूद्वीपे भारतादीनि नव खण्डानि वर्तन्ते एतेषु नवसु खण्डेषु भारतं यतः पुण्यपवित्रमस्ति अतः कर्मक्षेत्रं स्मृतम् कथितम् ॥ २९ ॥

हे मुनि सत्तम ! उस जम्बूद्वीप में भी भारतादि नवखंड हैं उन नवों खण्डों में भारत सब से पवित्र है इसलिये कर्मक्षेत्र कहा गया है ॥ २९ ॥

भवन्ति तत्र तीर्थानि नाना पापहराणि वै ॥
लोकोपकार सिद्ध्यर्थं निर्मितानि महात्मभिः ॥ ३० ॥

तत्र कर्मक्षेत्रे लोकोपकारसिद्धये महात्मभिः निर्मितानि नाना पापहराणि तीर्थानि भवन्ति वै इति पूर्वेणान्वयः ॥ ३० ॥

उस कर्मक्षेत्र में लोकोपकार के लिये महात्माओं के कई अनेक पापहारक तीर्थ हैं ॥ ३० ॥

कानिचिद्गिरिरूपाणि सरोरूपाणि कानिचित् ॥
ह्रदप्रस्रवणरूपाणि नदीरूपाणि कानिचित् ॥ ३१ ॥
वनारण्यस्वरूपाणि पुरीरूपाणि कानिचित् ॥
पुराणस्मृतिसंगीतमाहात्म्यानि महामुने ॥ ३२ ॥

हे महामुने ! पुराणस्मृतिसंगीतमाहात्म्यानि कानिचित्तीर्थानि गिरिरूपाणि कानिचित्सरोरूपाणि कानिचिद्ध्रदप्रस्रवणरूपाणि कानिचिन्नदीरूपाणि कानिचिद्वनारण्यस्वरूपाणि पुरीरूपाणि सन्ति ॥ ३१, ३२ ॥

हे महामुनि ! पुराणों में और स्मृतियों में जिन २ तीर्थों महात्म्य वर्णन किया गया है उन में कितने तो गिरिपर्वतों के र में हैं, कितने सरोवरों के रूप में हैं, कितने झरनों के रूप में हैं, कित नदी के रूप में हैं, कितने बन तथा अरण्य के रूप में हैं औ कितने पुरियों के रूप में हैं ॥ ३१, ३२ ॥

तत्रापि रत्नभूतानि विरलान्येव भूतले ॥
महामाहात्म्ययुक्तानि सद्यः पाप हराणि वै ॥ ३३ ॥

---

१) हिमगिरी, कैलाशगिरी प्रभृति ।
२) पुष्कर, कपिल प्रभृति ।
३) हरद्वार ।
४) गंगा, यमुना, सरस्वती प्रभृति ।
५) वृन्दावन, बदरीवन प्रभृति ।
६) दण्डकारण्य, नैमिषारण्य प्रभृति ।
७) काशी, वैद्यनाथ, जगन्नाथ इत्यादि

तत्र तेष्वपि पूर्वोक्तानेकरूपतीर्थेषु भूतलेमहामाहात्म्ययुक्तानि सद्यः पापहराणि रत्नभूतानि विरलान्येव तीर्थानि सन्ति अत्रापि वै पाद पूरकोव्ययः ॥ ३३ ॥

उन ऊपर लिखे हुवे अनेक रूप तीर्थों में महामाहात्म्य से युक्त तत्काल पापों के नाश करनेवाले और रत्न स्वरूप इस भूतल में कोई २ तीर्थ हैं ॥ ३३ ॥

गंगा च यमुनाचैव तथा प्राची सरस्वती ॥
नर्मदा च पयोष्णी च कृष्णा वेणी सवेदिका ॥ ३४ ॥
सप्तपुर्यो गयशिरः कुरुक्षेत्रं त्रिपुष्करम् ॥
सेतुबन्धेश्वरादीनि तीर्थरत्नानि सुव्रत ॥ ३५ ॥

हे सुव्रत ! गंगाद्या एता नद्यस्तथा, अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, अवन्तिकापुरी, द्वारावती एताः सप्तपूर्यः गयशिरो गया, कुरुक्षेत्रं, त्रिपुष्करम् सेतुबन्धेश्वरादीनि च तीर्थेषु तीर्थ रत्नानि स्युः ॥ ३४, ३५ ॥

हे सुव्रत ! नदी रूप तीर्थों में गंगा, यमुना, प्राची, सरस्वती, नर्मदा, पयोष्णी, कृष्णा, और वेदिका; एवं पुरी रूप तीर्थों में अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, अवन्तिकापुरी, द्वारावतीपुरी तथा गया एवं कुरुक्षेत्र, त्रिपुष्कर, सेतुबन्धेश्वर (रामेश्वर) ये सब तीर्थ रत्न हैं ॥ ३४, ३५ ॥

एषु सर्वेषु तीर्थेषु स्नानदानजपादिभिः ॥
भवन्ति प्रत्यया लोके यथाकामं यथा मतम् ॥ ३६ ॥

(स्पष्टार्थोयम्)—

इन सब तीर्थों में जैसी कामना तथा मत से स्नान, दान और जपादि किये जाते हैं, तदनुकूल फल प्राप्ति होने से विश्वास होता है ॥

एषु सर्वेषु तीर्थेषु सर्वेषां पापहानये ॥
सर्वेश्वरः सर्वरूपः सर्वतीर्थमयोऽवसीत् ॥ ३७ ॥

एषु सर्वेषु तीर्थेषु सर्वेषां पापहानये पापनाशाय सर्वतीर्थस्वरूपधृक् [illegible] ॥ सर्वरूपः सर्वेश्वरः परमेश्वरः विराजते ॥ ३७ ॥

इन सब तीर्थों में सब के पाप को नाश करने के लिए सब तीर्थों के स्वरूप सर्वस्वरूप सर्वेश्वर, परमेश्वर, सदा विराजमान रहते हैं ॥ ३७ ॥

तथापि सर्वतीर्थेषु तारतम्यं प्रवर्तते ॥
विवेकेन महाभाग कलांशादिप्रभेदतः ॥ ३८ ॥

हे महाभाग ! तथापि सर्वतीर्थेषु विवेकेन कलांशादिप्रभेदतः तारतम्यं न्यूनाधिक्यं प्रवर्तते ॥ ३८ ॥

हे महाभाग ! यद्यपि सर्वतीर्थमय सर्वेश्वर सब तीर्थों में विराजमान है, तौ भी विचार दृष्टि से देखने पर परमेश्वर के कला और अंशों के भेद से सब तीर्थों में फलों का न्यूनाधिक है ॥ ३८ ॥

इदं तीर्थमयं वर्षं भारतं व्यपदिश्यते ॥
कर्मक्षेत्रं परंपुण्यं सर्वत्र सुखदायकम् ॥ ३९ ॥

इदं भारतं वर्षं तीर्थमयं परंपुण्यं सर्वत्र सुखदायकम् कर्मक्षेत्रं व्यपदिश्यते ॥ ३९ ॥

, इस तीर्थमय परम पवित्र सब जगह सुख देनेवाले भारतवर्ष को कर्मक्षेत्र कहा जाता है ॥ ३९ ॥

तत्र जन्माप्यमानुष्यं योनरः सर्वसिद्धिदम् ॥
नास्नाति सर्वतीर्थेषु तेनात्मा वंचितो ध्रुवम् ॥ ४० ॥

तत्र कर्मक्षेत्रे योनरः सर्वसिद्धिदं मानुष्यं जन्माप्य जन्मसंप्राप्य सर्वतीर्थेषु ना स्नाति तेन नरेण ध्रुवं निश्चयेनात्मा वंचित स आत्मानं वंचितवानिति ॥ ४० ॥

उस कर्मक्षेत्र में सर्व सिद्धि दायक मनुष्य जन्म को पाकर जिसने सब तीर्थों में स्नान नहीं किया उसने आत्मा को धोखा दिया ॥ ४० ॥

यज्ञदानादिकं कर्म निर्धनैर्नैवसाध्यते ॥
तीर्थ स्नानादिकं पुण्यं भक्तिश्रद्धासमन्वितैः ॥ ४१ ॥
देहमात्रावशेषैश्च निर्धनैरपिसाध्यते ॥
तस्मात्तीर्थं वरं लोके सर्वपुण्येषु मानद ॥ ४२ ॥

हे मानद ! निर्धनैर्जनैर्यज्ञदानादिकं नैव साध्यते । तीर्थ स्नानादिकं पुण्यं भक्तिश्रद्धासमन्वितैर्देहमात्रावशेषैर्निर्धनैरपि साध्यते तस्माल्लोके सर्वपुण्येषु तीर्थं वरम् ॥ ४१, ४२ ॥

हे मुनि ! धनरहित दरिद्रमनुष्यों से यज्ञ दानादिक कर्म का साधन नहीं हो सकता क्योंकि इस में प्रचुर धन की आवश्यकता रहती है और तीर्थस्नानादिक पुण्यकार्य को भक्ति तथा श्रद्धा जिसको होती है वह महादरिद्र मनुष्य जिसको देहमात्र ही शेष धन है वह भी साधन कर सकता है, इसलिये इस संसार में सभी पुण्यों में तीर्थ ही उत्तम है क्योंकि यह सब के वास्ते सुलभ है ॥ ४१, ४२ ॥

सदा तीर्थपरैर्भाव्यं सर्वलोकैरिह स्फुटम् ॥
तीर्थस्नानसमं पुण्यं न भूतं नभविष्यति ॥ ४३ ॥

सर्व लोकैस्सर्वजनैस्सदा तीर्थपरैर्भाव्यम् भवितव्यमितीह स्फुटं स्पष्टं भवति तीर्थ स्नानसमं पुण्यं नभूतं न भविष्यतीति ॥ ४३ ॥

इसलिये निश्चय होताहै कि सभीमनुष्योंको सदा तीर्थसेवी होनाचाहिये क्योंकि तीर्थस्नानकेसमान पुण्य औरकोई यज्ञादि नहुआहै, नहोगा ॥४३॥

एषु सर्वेषु तीर्थेषु सर्वेषां पापहानये ॥
सर्वेश्वरः सर्वरूपः सर्वतीर्थमयो वशी ॥ ३७ ॥

एषु सर्वेषु तीर्थेषु सर्वेषां पापहानये पापनाशाय सर्वतीर्थ
तीर्थान्यस्वरूपभूतं नास्तियस्य स सर्वरूपः सर्वेश्वरः परमेश्वरः
विराजते ॥ ३७ ॥

इन सब तीर्थों में सब के पाप को नाश करने के लिये सब तीर्थों
स्वरूप सर्वस्वरूप सर्वेश्वर, परमेश्वर, सदा विराजमान रहते हैं ॥ ३७

तथापि सर्वतीर्थेषु तारतम्यं प्रवर्तते ॥
विवेकेन महाभाग कलांशादिप्रभेदतः ॥ ३८ ॥

हे महाभाग! तथापि सर्वतीर्थेषु विवेकेन कलांशादिप्रभेद
तारतम्यं न्यूनाधिक्यं प्रवर्तते ॥ ३८ ॥

हे महाभाग! यद्यपि सर्वतीर्थमय सर्वेश्वर सब तीर्थों में विराजमा
है, तो भी विचार दृष्टि से देखने पर परमेश्वर के कला और अंशों
भेद से सब तीर्थों में फलों का न्यूनाधिक है ॥ ३८ ॥

इदं तीर्थमयं वर्षं भारतंव्यपदिश्यते ॥
कर्मक्षेत्रं परंपुण्यं सर्वत्र सुखदायकम् ॥ ३९ ॥

इदं भारतं वर्षं तीर्थमयं परंपुण्यं सर्वत्र सुखदायकम् कर्मक्षे
व्यपदिश्यते ॥ ३९ ॥

इस तीर्थमय परम पवित्र सब जगह सुख देनेवाले भारतवर्ष को
कर्मक्षेत्र कहा जाता है ॥ ३९ ॥

तत्र [illegible] गोचरः सर्वसिद्धिदम् ॥

तत्र कर्मक्षेत्रे योनरः सर्वसिद्धिदं मानुष्यं जन्माप्य जन्मसंमाप्य सर्वतीर्थेषु ना स्नाति तेन नरेण ध्रुवं निश्चयेनात्मा वंचितः स आत्मानं वंचितवानिति ॥ ४० ॥

उस कर्मक्षेत्र में सर्व सिद्धि दायक मनुष्य जन्म को पाकर जिसने सब तीर्थों में स्नान नहीं किया उसने आत्मा को धोखा दिया ॥ ४० ॥

यज्ञदानादिकं कर्म निर्धनैर्नैवसाध्यते ॥
तीर्थ स्नानादिकं पुण्यं भक्तिश्रद्धासमन्वितैः ॥ ४१ ॥
देहमात्रावशेषैश्च निर्धनैरपिसाध्यते ॥
तस्मात्तीर्थं वरं लोके सर्वपुण्येषु मानद ॥ ४२ ॥

हे मानद ! निर्धनैर्जनैर्यज्ञदानादिकं नैव साध्यते । तीर्थ स्नानादिकं पुण्यं भक्तिश्रद्धासमन्वितैर्देहमात्रावशेषैर्निर्धनैरपि साध्यते तस्माल्लोके सर्वपुण्येषु तीर्थं वरम् ॥ ४१, ४२ ॥

हे मुनि ! धनरहित दरिद्रमनुष्यों से यज्ञ दानादिक कर्म का साधन नहीं हो सकता क्योंकि इस में प्रचुर धन की आवश्यकता रहती है और तीर्थस्नानादिक पुण्यकार्य को भक्ति तथा श्रद्धा जिसको होती है वह महादरिद्र मनुष्य जिसको देहमात्र ही शेष धन है वह भी साधन कर सकता है, इसलिये इस संसार में सभी पुण्यों में तीर्थ ही उत्तम है क्योंकि यह सब के वास्ते सुलभ है ॥ ४१, ४२ ॥

सदा तीर्थपरैर्भाव्यं सर्वलोकै रिह स्फुटम् ॥
तीर्थस्नानसमं पुण्यं न भूतं नभविष्यति ॥ ४३ ॥

सर्व लोकैस्सर्वजनैस्सदा तीर्थपरैर्भाव्यम् भवितव्यमितीह स्फुटं स्पष्टं भवति तीर्थ स्नानसमं पुण्यं नभूतं न भविष्यतीति ॥ ४३ ॥

इसलिये निश्चय होताहै कि सभीमनुष्योंको सदा तीर्थसेवी होनाचाहिये क्योंकि तीर्थस्नानकेसमान पुण्य औरकोई यज्ञादि नहुआहै, नहोगा ॥४३॥

तीर्थयात्रा महापुण्या पूर्वैः पूर्वतरैः कृता ॥
लोमशादिभिरन्यैश्च राजर्षिप्रवरैः पुनः ॥ ४४ ॥

पूर्वैः पूर्वतरैः प्राचीनातिप्राचीनैर्लोमशादिभिर्महर्षिभिः पुनरन्यैश्च राजर्षिभिर्विश्वामित्रादिभिर्महापुण्या तीर्थयात्रा कृता ॥ ४४ ॥

प्राचीनातिप्राचीन लोमशादि महर्षियों ने और राजर्षिप्रवर विश्वामित्रादि ने तीर्थ यात्रा को महापुण्य बनाया है ॥ ४४ ॥

तस्मात्कर्ममयीम्प्राप्य भूमिं भारतसंज्ञिकाम् ॥
यैःस्नातं सर्वतीर्थेषु तस्य जन्म कृतार्थकम् ॥ ४५ ॥

(स्पष्टम्)—

इसलिये भारतभूमि जैसी कर्मभूमि पाकर जिसने सब तीर्थों में स्नान किया उसका जन्म सार्थक है ॥ ४५ ॥

तीर्थं तीर्थं प्रतिस्नातुं कथं शक्यं तपोधन ॥
तस्माद्रहस्यं यत्तीर्थं सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ ४६ ॥
रत्नभूतेषु तीर्थेषु रत्नभूतं यदुच्यते ॥
तत्तेहं संप्रवक्ष्यामि त्वमिहैकमनाः शृणु ॥ ४७ ॥

हे तपोधन ! तीर्थं तीर्थं प्रतिस्नातुं मनुष्यैः कथं शक्यं तस्मात्सर्वतीर्थफलप्रदं रत्नभूतेषु तीर्थेषु रत्नभूतं रहस्यं गोप्यं यत्तीर्थं तदहं ते तुभ्यं संप्रवक्ष्यामि त्वमिहैकमनाः शृणु ॥ ४६, ४७ ॥

हे तपोधन ! सभी तीर्थोंमें स्नान करलेना मनुष्य शक्तिसे बाह्य है इसलिये सभी तीर्थोंके फल देनेवाला, रत्न तीर्थों में भी परमरत्न और गोप्य जो तीर्थकहागयाहै उसकोमैं तुमसे कहताहूं सावधानहोकर सुनो ॥४६, ४७॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे स्कन्दागस्त्यसम्वादे कपिलायतनमाहात्म्ये तीर्थवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ।



द्वितीयाध्यायकथारंभः ।



(सूत उवाच)

एतन्निशम्य वचनं स्कन्दस्य कलशोद्भवः ॥
भूयोविज्ञापयामास मुदा परमया युतः ॥ १ ॥

सूतश्शौनकादीन् कथयति यत् कलशोद्भवोऽगस्त्यस्स्कन्दस्यै तद्वचनं निशम्य श्रुत्वा परमयात्यन्तया मुदा हर्षेण युतः भूयः पुनर्विज्ञापयामास ॥ १ ॥

सूतजी शौनकादि ऋषियों से बोले कि अगस्त्यजी ने स्कन्दजी के यह वचन सुनकर परम हर्ष के साथ फिर निवेदन किया ॥ १ ॥

स्वामिंस्ते वचनादत्र महती मे प्रसन्नता ॥
संजाता मनसोऽत्यर्थं वारिणश्शरदोयथा ॥ २ ॥

हे स्वामिन् ! तेतववचनादत्र मे मनसः शरदः शरदृतोर्वारिणो जलस्य यथा प्रसन्नता भवति तथा अत्यर्थं अतिशयं प्रसन्नता जाता ॥ २ ॥

हे स्वामिन् ! जैसे शरत्काल से जल की प्रसन्नता होती है वैसे आपके वचनों से मेरे मन को अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त हुई है ॥ (यहां प्रसन्नता का तात्पर्य्य स्वच्छता से है) ॥ २ ॥

भगवन्तं पुनः प्रष्टुं समीहे हरनन्दन ॥
भूयो ममैनं सन्देहमपाकुरु दयानिधे ॥ ३ ॥

हे हरनन्दन ! पुनर्भगवन्तं प्रष्टुं समीहे दयानिधे ! भूयो ममैनं सन्देहं अपाकुरु ॥ ३ ॥

हे हरनन्दन ! आपसे पुनः प्रश्न करने की इच्छा करता हूं, हे दयानिधे ! एक बार और मेरे सन्देह को दूर कीजिये ॥ ३ ॥

यत्त्वयोक्तम्महातीर्थं गुह्यं गुह्यं महीतले ॥
तस्य तीर्थस्य यन्नाम तन्मे वद विदाम्वर ॥ ४ ॥

हे विदाम्वर ! महीतले गुह्यं गुह्यं यन्महातीर्थं त्वया उक्तम् तस्य तीर्थस्य यन्नाम तन्मे वद ॥ ४ ॥

हे ज्ञानियों में श्रेष्ठ ! इस पृथ्वीतल में गोप्यगोप्य अर्थात् अत्यन्त गुप्त महातीर्थ जो आपने कहा है उस तीर्थ का जो नाम है वह मुझे बतलाइये ॥ ४ ॥

किन्तत्तीर्थं किम्प्रमाणं किम्फलं किंसमीपगम् ॥
किम्माहात्म्यं किमाधिक्यं किंदेशस्थं किमात्मकम् ॥५॥

(स्पष्टार्थोयम्)

यह कौन तीर्थ है, उसका क्या प्रमाण है, क्या फल है, किसके समीप है, क्या माहात्म्य है, उस तीर्थ में क्या विशेषता है, किस देश में है और उसका कैसा रूप है ? ॥ ५ ॥

एतत्सर्वं समाचक्ष्व विचक्षणशिरोमणे ॥
नृणां निश्श्रेयसार्थाय तव सूक्तं प्रवर्तते ॥ ६ ॥

विचक्षणाविद्वांसस्तेषां शिरस्सु मणिरिव तत्सम्बुद्धौ हे विचक्षणशिरोमणे ज्ञानिशिरोमणे ! एतत्सर्वं समाचक्ष्व कथय यतस्तव सूक्तं (सुष्ठुशोभनं उक्तं कथनं सूक्तं भवति) तव सुवचनं नृणाम्मनुष्याणां निश्श्रेयसार्थाय निश्शेषकल्याणलाभाय प्रवर्तते भवति ॥ ६ ॥

हे ज्ञानिशिरोमणि ! ये सब विषय पूर्ण रीति से बतलाइये, क्योंकि आपका सुकथन मनुष्यों के परम कल्याण के लिये है ॥ ६ ॥

(सूत उवाच)

इति पृष्टः स भगवान्मुनिना कुंभयोनिना ॥
उवाच सुरसेनानीः स्मयन्निव गतस्मयः ॥ ७ ॥

इत्येवं कुंभयोनिना कुंभो घटो योनिर्जन्मस्थानं यस्य स तेन मुनिना अगस्त्येन पृष्टः स गतस्मयो निरहंकारो भगवान् सुराणा सेनानी स्कन्दः स्मयन् स्वचित्तोद्रेकं प्रकटयन्निवोवाच चित्तोद्रेकः स्मयोमद इत्यमरः ॥ ७ ॥

सूतजी बोले कि जब कुंभयोनि अगस्त्य मुनि ने इसप्रकार प्रश्न किया तो निरहंकारी भगवान् स्कन्दजी ने अपने हृदय में जो तीर्थों के भेद भरे थे उनको प्रकट करते हुवे कहा ॥ ७ ॥

शृणुविप्रेन्द्र वक्ष्यामि गोप्यं तीर्थमनुत्तमम् ॥
यन्नाम श्रुतिमात्रेण पापराशिः प्रलीयते ॥ ८ ॥

हे विप्रेन्द्र ! अनुत्तमं गोप्यं तीर्थं प्रवक्ष्यामि शृणु। यन्नामेति स्पष्टम् ॥ ८ ॥

हे विप्रेन्द्र ! एक उत्तम और गोप्य तीर्थ को कहता हूं, सुनो ! जिसके नाम श्रवण करने से पापराशि नष्ट हो जाता है ॥ ८ ॥

अस्ति देशस्स विपुलस्समुद्रो वालुकामयः ॥
महिष्ठो मेदिनीपृष्ठे निसर्गादेव पावनः ॥ ९ ॥

अस्तिस मेदिनीपृष्ठे पृथ्वीपृष्ठे महिष्ठः अतिशयेन महान् महिष्ठः पूज्यतमः निसर्गात्स्वभावादेव पावनः पवित्रः वालुकामयः समुद्रः विपुलो देशः ॥ ९ ॥

पृथ्वी पर अतिशय पूज्य स्वभाव से ही पवित्र वालुकामय समुद्र एक विपुल (बहुत बड़ा) प्रदेश है ॥ ९ ॥

यत्रोत्तङ्को नाम मुनिर्वालुकामयसागरे ॥
चिरकालं चकारोग्रैस्तपस्तीव्र न्तपोधनः ॥ १० ॥

यत्र देशे वालुकामयसागरे तपोधन उत्तङ्को नाम मुनिश्चिरकाल न्तीव्रं तीव्रण न्तप उग्रैश्चकार ॥ १० ॥

जिस देश के बालुकामय मार्ग में तपोधन उत्तंकमुनि ने बहु दिनों तक कठिन तपस्या की ॥ १० ॥

तस्यैवं तप्यमानस्य तपस्तीव्रं सुदुश्चरम् ॥
धुन्धुर्नाममहादैत्योऽभवदाश्रमसन्निधौ ॥ ११ ॥

सुदुश्चरं तीव्रं तपस्तप्यमानस्य तस्योत्तंकस्याश्रमसन्निधौ महादैत्यो धुन्धुर्नामाभवत् ॥ ११ ॥

इस प्रकार अत्यन्त क्लेशसाध्य कठिन तप को तपते हुवे उत्तंक मुनि के आश्रम के पास में धुंधु नाम का एक महादैत्य उत्पन्न हुवा ॥ ११ ॥

वालुकान्तर्हितश्शश्वच्छेतेऽसौ कलुषाशयः ॥
तपोविघ्नकरो नित्यं मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ १२ ॥

भावितात्मनां भावितः साक्षात्कारं नीतः आत्मा यैः ते भावितात्मानस्तेषां मुनीनां नित्यं तपोविघ्नकरः असौ कलुषाशयः पापात्मा महादैत्यः वालुकान्तर्हितः वालुकान्तर्गतश्शश्वत् निरन्तरं शेते ॥ १२ ॥

आत्मदर्शी मुनियों की तपस्या में निरन्तर विघ्न करताहुवा वह पापात्मा धुंधु वालुका में छिपकर सदा सोया रहता था ॥ १२ ॥

कदाचिन्मुखतो वह्निं वायुं वापिसमुत्सृजन् ॥
उत्तंकस्य तपोविघ्नं चक्रे स दुष्टदानवः ॥ १३ ॥

स दुष्टदानवः मुखतः कदाचिद्वह्निमग्निं कदाचिद्वायुं समुत्सृजन्नुद्गिरन्नुत्तंकस्य तपोविघ्नं चक्रे ॥ १३ ॥

(१) राक्षस मायावी होते हैं, उनके वास्ते मुख से अग्नि उत्पन्न करना अथवा प्रचण्ड वायु उत्पन्न करना कोई कठिन समस्या नहीं है। वाल्मीकिरामायण में लक्ष्मणजी के साथ मेघनाद ने युद्ध करते हुए अपनी सारी सेना को लक्ष्मण के ही रूप बनाडाला था। दुर्गा में रक्तबीज के देह से जो रक्तपात होता था उसके प्रत्येक बिन्दु से असंख्य दानव उत्पन्न हो जाते थे।

यह दुष्ट दानव मुख से कभी अग्नि को कभी वायु को वमन करता हुआ उत्तंकमुनि की तपस्या में विघ्न करता रहता था ॥ १३ ॥

**इत्यन्तमपकुर्वाणं दृष्ट्वा विप्रः स तापसः ॥
कथमेषभवेद्वध्यश्चिन्तयामास चेतसि ॥ १४ ॥**

इत्थं पूर्वोक्तामिवगगनवायूद्गिरणादिव्यापारेणापकुर्वाणंतंदैत्यं दृष्ट्वा एष दैत्यः कथं वध्योभवेदिति स तापसोविप्रः उत्तंकश्चेतसि चिन्तयामास तद्वधं विचारयामास ॥ १४ ॥

इस प्रकार मुख से अग्नि और वायु को उत्पन्न करके अपकार करनेवाले दैत्य को देखकर वह तपस्वी ब्राह्मण उतंकमुनि अपने मन में विचारने लगे कि किसप्रकार से वह माराजाय ॥ १४ ॥

**स्वतः सामर्थ्ययुक्तोऽपि प्रलयानलसन्निभः ॥
क्षमावान् स्वतपोभंगभिया ना कुरुत स्वयम् ॥ १५ ॥**

क्रोधसमये प्रलयानलसन्निभः प्रलयाग्निसमः क्षमावान् शान्तचेताः स मुनिः स्वतः सामर्थ्ययुक्तोऽपि दैत्यवधकरणे स्वयं समर्थोऽपि स्वतपोभंगभिया भयेन स्वयं न अकुरुत दैत्यवधाय स्वयं नोद्यत । अत्र स्वयम् इति स्थले ध्रुवमापिपाठः ॥ १५ ॥

क्रोध के समय में प्रलयकाल के अग्नि के सदृश उस क्षमावान् मुनि ने निज के सामर्थ्य होते हुए भी अपनी तपस्या के भंग होने के भय से स्वयं उसका वध नहीं किया ॥ १५ ॥

**ततो बुद्ध्या विचार्य्यासौ नृपं कुवलयाश्वकम् ॥
धुंधोर्वधाय धर्म्मात्मा गृहे गत्वा व्यजिज्ञपत् ॥ १६ ॥**

ततस्तदनन्तरमसौ महात्मा धुंधोर्वधाय कुवलयाश्वकं कुवलयाश्व-नामानं नृपं बुद्ध्या विचार्य तस्य गृहेगत्वा व्यजिज्ञपत् विज्ञापयामास ॥ १६

इस के अनन्तर उस महात्मा ने धुंधुनामक दैत्य को वध करने
य अपनी बुद्धि में राजा कुवलयाश्व को विचारकर उनके घर
हर उनसे कहा ॥ १६ ॥

ाजन्मे क्रियतां कर्म किञ्चिद्यत्ते निवेदये ॥
ापस्विनिदयां कृत्वा तपो विघ्नं विनाशय ॥ १७ ॥

हे राजन्! किञ्चित्कर्म क्रियतां यत्ते तुभ्यं निवेदये तपस्विनि
ये दयां कृत्वा तपो विघ्नं विनाशय ॥ १७ ॥

हे राजन्! जिस काम को आपसे निवेदन करता हूं उसको
जिये। काम यह है कि तपस्वियों के ऊपर दया करके तप के विघ्न
विनाश कीजिये ॥ १७ ॥

ाजानो हि महाराज विष्णोरंशसमुद्भवाः ॥
थाच श्रूयते लोके नाविष्णुः पृथिवीपतिः ॥ १८ ॥

हे महाराज! राजानः विष्णोरंशसमुद्भवा भवन्ति तथाच पृथ्वीपतिः
विष्णुः ना मनुष्यः अर्थान्मनुष्य रूपो विष्णुरिति लोके श्रूयते ॥ १८

हे महाराज! राजा लोग विष्णुभगवान के अंश से उत्पन्न
े हैं। और संसार में भी यही कथन प्रसिद्ध है ॥ १८ ॥

दुःखं ममराजेन्द्र श्रूयतां श्रुतिदानतः ॥
रोपकारकरणे यूयं धात्रा विनिर्मिताः ॥ १९ ॥

हे राजेन्द्र! ममयद्दुःखं तच्छ्रुतिदानतः श्रूयतां यूयं परोपका
े धात्रा महता विनिर्मिताः ॥ १९ ॥

हे राजेन्द्र! मेरा जो दुःख है सो कान देकर सुनिये, आपलोग
पकार करनेहीके लिये विधाता से निर्म्माण किये गये हैं ॥ १९ ॥

धुन्धुर्नाम महादुष्टो मधुसूनुर्महाबलः।
नित्यं रजस्सु स्वपिति मदाश्रमसमीपगः॥ २०॥

महाबलो भीषणपराक्रमो महादुष्टो मधुसूनुः मधुनामको दानवः पूर्वमभूत् यद्वधं भगवता विष्णुनाकारि येन तदारभ्य भगवतो मधुसूदन इति भगवान् मधुसूदनेन नाम्ना प्रसिद्धिंगतः तत्कथाविस्तारं पुराणेषु प्रसिद्धं तस्य मधोः पुत्रः महादुष्टः धुन्धुर्नामकः मदाश्रमसमीपगः मदीयाश्रमनिकटे वसन् नित्यं रजस्सु वालुकास्वन्तर्हितः स्वपिति शेते॥ २०॥

एक मधुनामक दैत्य था (जिस मधु को विष्णु भगवान ने वध किया जिस कारण भगवान का नाम मधुसूदन पड़ा जिस की कथा पुराणों में प्रसिद्ध है) जिसका पुत्र महाबली और महादुष्ट धुन्धु नाम का दैत्य है जो मेरे आश्रम के निकट ही वालुकाओं में छिपकर सदा सोता है॥ २०॥

स मे विघ्नं करोत्युच्चैः सदा पर्वणि पर्वणि।
तं ध्वंसय महाबाहो! विष्णोरंशोऽसि भूतले॥ २१॥

स धुन्धुर्मे मम पर्वणि पर्वणि सदा उच्चैर्विघ्नमुपद्रवं करोति हे महाबाहो! तं ध्वंसय नाशय यतस्त्वं भूतले विष्णोरंशोऽसि॥ २१॥

वह धुन्धु नामक दानव मेरे प्रत्येक पर्वों में अत्यन्त विघ्न करता है। हे महाबाहु! तुम पृथ्वी में विष्णु भगवान् का अंश हो इसलिये उसका नाश करो॥ २१॥

स एव मुक्तोनृपतिर्ब्रह्मण्यः सत्यसंगरः॥
साहाय्यं मनसा कर्तुं ब्राह्मणार्थे समुद्यतः॥ २२॥

सत्यसंगरः सत्यव्रतः ब्रह्मण्यः ब्रह्मनिष्ठः ब्राह्मणप्रिय इतिवा स नृपतिः राजा एवं उक्तः उत्तंकमुनिना कथितो ब्राह्मणार्थे साहाय्यं कर्तुं मनसा समुद्यतः॥ २२॥

सत्य का पालन करनेवाले आदर्शों के भक्त उस राजा (कुवलयाश्व) ने उत्तंक मुनि ने जब ऐसा कहा तब उत्तंक मुनि की सहायता के लिये राजा ने मनसा संकल्प किया ॥ २२ ॥

एकविंशतिसाहस्रैः संख्यातैः पुत्रकैर्युतः ॥
गत्वा धुंधुं जघानाशु विष्णुवीर्योपबृंहितः ॥ २३ ॥

विष्णुवीर्योपबृंहितः विष्णुतुल्यपराक्रमः विष्णोरंशत्वादिति। राजा स्वकीयैरेकविंशतिसहस्रैः संख्यातैः पुत्रकैर्युत उत्तंकमुनेराश्रमसमीपं गत्वा आशु शीघ्रं धुंधुं जघान ॥ २३ ॥

विष्णुभगवान के तुल्यबली उस राजा ने अपने इक्कीस हजार पुत्रों के साथ उत्तंक मुनि के आश्रम के समीप जाकर उस धुंधु दानव को मारडाला ॥ २३ ॥

धुंधोर्मुखाग्निना दग्धास्तस्यैते राजसूनवः ॥
दैवेन दुर्वितर्क्येण त्रय एवावशेषिताः ॥ २४ ॥

ते सर्वे राजसूनवः राजपुत्राः धुंधोर्मुखाग्निना दग्धा भस्मीभूताः दुर्वितर्क्येण दैवेन तेषु त्रय एवा वशेषिताः ॥ २४ ॥

इस युद्ध में राजा कुवलयाश्व के सभी पुत्रों को धुंधुदानव ने अपने मुख से अग्नि प्रगट करके जलादिया, भाग्य से तीन लड़के बच गये ॥ २४ ॥

धुन्धुमार इतिख्यातः कर्मणा तेन स द्विज।
सोयं शुद्धप्रदेशोस्ति समुद्रो वालुकामयः ॥ २५ ॥

(१) श्री रामचन्द्रजी ने समुद्र के तट पर जाकर सागर से सामुद्रिक पथ मांगने के लिये पूर्वाभिमुख हो हाथ जोड़ कुशासन लगा प्रार्थना करते तीन दिन उपवास कर दिया परन्तु सरित्पति प्रकट नहीं हुए। तब क्रुद्ध होकर धनुषबाण उठाया और ज्वलन्त बाणों से समुद्र को खौला दिया, सामुद्रिक सब जन्तु व्याकुल होगये, समुद्र से भयंकर शब्द होने लगा और आकाश, पाताल, वन, पर्वत सब कांपने लगे। तब सागर समुद्र के

हे द्विज ! तेन कर्म्मणा स राजा कुवलयाश्वः धुंधुमार इतिख्यातो नाम संज्ञांगतः मधोर्वधेन मधुसूदनवत्। सोयं वालुकामयः समुद्रश्शुद्ध प्रदेशो स्ति ॥ २५ ॥

हे विप्र ! उस कर्म को करने (धुंधु को मारने) से उस कुवलयाश्व नाम के राजा का नाम धुंधुमार हुवा, और वही यह वालुकामय शुद्ध प्रदेश है ॥ २५ ॥

के मध्य से निकले तबतक रामचन्द्रजी ने उस ब्रह्मास्त्र से समुद्र को शोष कर पैदल वानरी सेना को पार लेजाने की प्रतिज्ञा की, तब समुद्र की मानहानि देख देवताओं ने आकाशवाणी द्वारा मना किया और समुद्रदेव सम्मुख आकर प्रार्थना कर बोले कि हे राजकुमार ! हम काम से, लोभ से, भय से, किसीप्रकार उस जल को रोक नहीं सकते हैं आपकी जैसी इच्छा है वही हम भी करने को तैयार हैं और जो आप करेंगे उस को हम सहन करेंगे। आपकी सेना पार जायगी उस समय कोई जीव उस को नहीं खा सकता किन्तु यह जल खारि बीच २ में उत्तम उत्तम स्थल दिखावेगा। ऐसा सुनकर रामचन्द्रजी ने कहा कि इस अमोघ शस्त्र को किस देश में छोड़ूं ? तब समुद्र ने कहा कि उत्तर के देशों में एक द्रुमकुल्य नाम का मेरा पुण्यस्थान है वहांपर बहुत चोर डाकू आभीरादि पापी खा खा कर मेरे जल को स्पर्श करते और पीते हैं। हे राम ! इस उत्तम शर को वहांही छोड़िये। क्योंकि उन पापियों के स्पर्श से जो पाप होता है उस को मैं नहीं सहन कर सकता। यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने उसी देश में शर छोड़ा। तब से वहदेश मरुकान्तार (मरुजांगल) नाम से प्रसिद्ध हुआ और जिस स्थान में शर गिरा वहां पाताल से पानी ऊपर आने लगा, पृथ्वी में छिद्र होगया जिसको व्रणकूप कहते हैं। इसप्रकार अपने अग्न्यस्त्र से समुद्र के कुक्षिगत जल को शोष लिया और सर्वत्र रेतम् दीखने लगे। जब से इस देश का मरुजांगल नाम तीनों लोक में विख्यात हुआ। " विख्यातं त्रिषु लोकेषु मरु कान्तार मेवच ॥ शोषयित्वातु तं कुक्षिं रामो दशरथात्मजः ॥ वरं तस्मै ददौ विद्वान्मरवेऽमरविक्रमः ॥ " पीछे रामचन्द्रजी ने उस मरुदेश को वरदान दिया कि इस देश में पशुओं के चरने वारने तृण बहुत होंगे और रोग बीमारी उस देश में नहीं होंगी फल मूल और रसपूर्ण अनेक औषधियों से दुग्ध स्नेहपूर्ण क्षीरमादिन सुगन्धित वृक्षों से यह स्थान भीपूर्ण रहेगा। " एवमेभिश्च संयुक्तो बहुभिः संयुतोमरुः। रामस्य वरदानाच्च शिवः पंथा बभूवह ॥ " श्री रामचन्द्रजी का वरदान पाकर यह स्थान अनेक गुणों का आधार हुआ और इसके समस्त मार्ग यात्रियों के सुखदायक हुए ॥ वाल्मीकीय रामायणे युद्धकाण्डे २१-२२ सर्गे ॥

स्वभावनिर्मलो लोके निर्जनोऽपायवर्जितः ।
निर्भयो निर्धनश्चापि नैसर्गिकगुणान्वितः ॥ २६ ॥

अयं देशः लोके स्वभावेन स्वरूपेण निर्मलः स्वच्छ निर्जनो
रहित महामहीन्द्र ... गुणादिजनकः । निर्भयः निर्धनः अपि च नैसर्गिकगुणान्वित
प्राकृतिकगुणसम्पन्नोऽस्ति ॥ २६ ॥

संसार में यह देश स्वभावसुन्दर निर्जन तथा दुष्ट जना दुराचारी
प्रायः रहित है और निर्भय एवं निर्धन तथा प्राकृतिक गुणों से
है ॥ २६ ॥

तत्रस्था मानवाः सर्वे सरलाः शुद्धमानसाः ।
कापट्यचौर्यतास्कर्य्यवर्जिताः प्रायशस्सिपताः ॥ २७॥

तत्रस्थास्तद्देशसमुत्पन्नाः सर्वे मानवाः सरलाः शुद्धहृदयः
शुद्धमानसाः पवित्रान्तःकरणाः प्रायशः कापट्यचौर्य तास्कर्यवर्जिताः
ताः सन्ति ॥ २७ ॥

उस देश के सभी मनुष्य सीधे और शुद्धचित्त तथा कपट,
एवं चोरी इत्यादि दुर्गुणों से बहुधा वर्जित होते हैं ॥ २७ ॥

बाह्याचारविनिर्मुक्ता युक्ताश्चातिथिपूजने ॥
तद्देशीयास्तथाभूपाः सर्वथा पापभीरवः ॥ २८ ॥

ते मानवा बाह्याचारेण बाह्यशुद्धिरूपस्पर्शास्पर्शाचारादिना
विमुक्ता रहिता अतिथिपूजने अतिथिसत्कारे युक्ताश्च भवन्तीति ।
तद्देशीया भूपा राजानः सर्वथा पापभीरवो भवन्ति ॥ २८ ॥

वे मनुष्य बाहरी आचार-विचार से रहित और अतिथि सेवा में रत
हैं और उस देश के राजा सर्वथा पाप से डरते रहते हैं ॥ २८ ॥

विप्राश्च वेदरहिताः प्रतिग्रहविवर्जिताः ।
सुशीलाः साधवः सौम्यास्तथा निर्व्याजजीवनाः ॥२६॥

विप्रा ब्राह्मणाश्च वेदरहिताः प्रतिग्रहविवर्जिताः सुशीलाः साधवः सौम्यास्तथा निर्व्याजजीवनाश्च भवन्ति ॥ २६ ॥

उस देश के ब्राह्मण वेद शास्त्र को नहीं जानते और दान नहीं लेते एवं सुशील साधु और शान्त तथा निष्कपट जीवन व्यतीत करने वाले होते हैं ॥ २६ ॥

तद्देशीयाः स्त्रियश्शुद्धा अतिचांचल्यवर्जिताः ।
ऋजुस्वभावशालिन्यो देवतातिथिपूजिकाः ॥ ३० ॥

तद्देशीयास्तद्देशप्रसूताः स्त्रियः शुद्धाः शुद्धाचाराः अतिचांचल्य वर्जिताः ऋजुस्वभावशालिन्यः कोमलप्रकृतयो देवतातिथिपूजिकाश्च भवन्तीति ॥ ३० ॥

उस देश की स्त्रियां शुद्धाचरण वाली और अति चंचलता से रहित, कोमल स्वभाव की एवं देवता तथा अतिथि की सेवा करनेवाली होती हैं ॥ ३० ॥

तस्मिन्देशे महाभाग ! कश्चित्सिद्धो भविष्यति ॥
सोऽप्येनां पृथिवीं पूतां पावयन् संचरिष्यति ॥ ३१ ॥

हे महाभाग ! तस्मिन्देशे कश्चित्सिद्धो भविष्यति सोऽप्येनां पूतां पवित्रां पृथिवीं पावयन्नतिशयेन पवित्रीकुर्वन्संचरिष्यति ॥ ३१ ॥

हे महाभाग ! उस देश में कोई सिद्ध होगा जो इस पवित्र पृथिवी को अतिशय पवित्र करता हुवा विचरेगा ॥ ३१ ॥

प्रजास्तद्देशवासिन्यो देशाचारकृतादराः ॥
उष्ट्रारोहाश्वभवारिपायिन्यः स्पष्टभोजनाः ॥ ३२ ॥

तद्देशवासिन्य प्रजाः देशाचारानुवर्तिन्यः. देशस्य वै ...
कृत आदशेषाभिन्ना देशाचारानुसाराः उष्ट्रारोहाः यान्तु उष्ट्रा...
प्रवदितादपि धर्मशास्त्रे निषिद्धान्यपि यानानि चर्मपात्रजलं प्र...
सोऽशुद्धं तथापि चर्मपात्रादिभ्यः चर्मजलपानरताः स्पृष्टास्पृष्ट...
अपेक्षमाणाश्च ... ... सं...
मायन्ते धर्मशास्त्रे दूषितं च तथापि कुर्वन्तीति स्पृष्टभोजनाः ॥ ३२ ॥

उस देश के रहनेवाली प्रजा अपने देशाचार का बहुत प...
करती है ऊंटों की सवारी करती है चर्मजल पीती है हर किसी के ...
लगाया अन्नादि भोजन करती है ॥ ३२ ॥

(ऊंट की सवारी चर्मजल पान स्पर्शास्पर्श के विचार ...
भोजन इत्यादि धर्मग्रन्थों के अनुसार प्रायश्चित सूचक होता है इसी...
श्रावणीकर्म के संकल्प में इन सबों को क्षुद्र पापों में परिगणित कि...
गया है परन्तु एतद्देशी प्रजा को देशाचारवश करना ही पड़ता है ॥)

तथापि तद्दोषगणैरस्पृष्टास्तत्प्रभावतः ॥

तथापि अर्थात्पूर्वोक्तपापाचरणादपि तस्य सिद्धस्य प्रभाव...
तद्दोषगणैरुक्तदोषसमूहैरस्पृष्टा निर्लेपाः प्रजा भवन्तीति शेषः ॥

तथापि उस सिद्धके प्रभावसे वे उपरोक्तदोष प्रजाओंको नहीं ल...

ईदृग्गुणविशिष्टेऽस्मिन्विषये द्विपदाम्बर ॥ ३३ ॥
सर्वं तीर्थं शिरोरत्नं महातीर्थं विराजते ॥
ख्यातं यत्सर्वलोकेषु कपिलायतनन्त्विति ॥ ३४ ॥

हे द्विपदाम्बर ! ईदृग्गुणविशिष्टेऽस्मिन्विषये देशे
सर्वतीर्थललामभूतं महातीर्थं विराजते यत्तु सर्वलोकेषु
ख्यातं प्रसिद्धमस्तीति ॥ ३४ ॥

हे मनुष्य श्रेष्ठ ! ऐसे गुणों से युक्त उस देश में सब तीर्थों का मुकुट एक महातीर्थ है। जो सब लोकों में कपिलायतन इस नामसे प्रसिद्ध है॥ २४

समुद्रे वालुकापूर्णे महाद्वीपइव स्थितम् ॥

तत्कपिलायतनम् वालुकापूर्णे समुद्रे महाद्वीपइव स्थितमस्ति ॥

यह कपिलायतन वालुकामय समुद्र में एक महाद्वीप के सदृश वर्तमान है ॥

निर्जलेषु जलप्रायद्वीपोयं शर्करामयः ॥ २५ ॥
नाना मृगगणाकीर्णः सर्वकालनिरामयः ॥

निर्जलेषु निर्जलदेशेषु शर्करामयः सिकतामयः नानामृगगणाकीर्णः विविधमृगजातिव्याप्तः सर्वकालनिरामयोयं जलप्रायद्वीपः अर्थादस्मिन्महाप्रदेशे जलमपि भवत्येव ॥

इन निर्जल प्रदेशों में भी यह वालुकामय द्वीप अनेक मृगगणों से युक्त सर्वदा निरामय और जलयुक्त है, अर्थात् निर्जलदेश होने पर भी यहां जल हो ही जाता है।

प्रसिद्धात्पुष्करात्तीर्थात्प्रत्यग्दिशि तपोधन ॥ २६ ॥
वर्त्तते कापिलं तीर्थमेकविंशतियोजने ॥
कृष्णसारमयी भूमिर्वर्त्तते यत्र पावनी ॥ २७ ॥

हे तपोधन ! प्रसिद्धात्पुष्करात्तीर्थात् पुष्करक्षेत्रात्प्रत्यग्दिशि पश्चिमाशायां एक विंशति योजने कापिलं तीर्थंवर्तते यत्र कृष्णसारमयी पावनी पवित्रा भूमिर्वर्तते ॥ २६, २७ ॥

हे तपोधन ! इस प्रसिद्ध पुष्करतीर्थ से पश्चिम दिशामें इकीस योजन पर एक कपिलतीर्थ है जहां की पवित्रभूमि कृष्ण-सार मृगोंसे युक्त है॥ २६, २७

यज्वनां यात्र विप्रेन्द्र ! सदा स्वर्गप्रदायिका ॥

हे विप्रेन्द्र ! यत्र कपिल तीर्थे या पूर्वश्लोकोक्ता कृष्ण-सारमयी भूमिः सा यज्वनां यज्ञकर्तॄणां सदा स्वर्गदायिका भवतीति ॥

हे विप्रवर! यह कृष्ण-सारमयी पवित्र भूमि यज्ञ करनेवालों को सदा स्वर्ग देती है॥

सर्वतीर्थवरं ह्येतत्सर्वक्षेत्रवरं तथा॥ ३८॥
सारात्सारतरं स्थानं पुण्यात्पुण्यतरं पुनः॥

(स्पष्टार्थः)—

यह स्थान सब तीर्थों से तथा सब क्षेत्रों से श्रेष्ठ है और सार से उत्तम तथा पवित्र से भी पवित्र है॥

त्रिषु लोकेषु भूर्लोको भूर्लोके लोक एव हि॥ ३९॥
लोके द्वीपवती पृथ्वी जम्बूद्वीपस्ततोऽधिकः॥
तद्वर्षनवके विप्र श्रेष्ठं भारतमुच्यते॥ ४०॥

(१) इस भूर्लोक में संक्षेप से जम्बूद्वीपादि सातों द्वीपों तथा उनमें से केवल जम्बू के ही अन्तर्गत नवों खण्डों को दिखाते हैं। भूगोल के आधा उत्तर का भाग जम्बू है, और जम्बूद्वीप की दक्षिणी सीमा पर क्षारसमुद्र है, और इसके उत्तर तीर के दे को निरक्षदेश कहते हैं, ९० निरक्षदेश में लंका (सीलोन), इससे पश्चिम रोमक (इस इससे पश्चिम सिद्धपुर (अमेरिका), उससे आगे यमकोटि ये चार स्थान हैं, अर्थात् ल से पूर्व यमकोटि, पश्चिम रोमक और ठीक नीचे सिद्धपुर है। ये चारों स्थान भूगोल चतुर्थांश पर हैं। और इन चारों स्थानों से मेरुपर्वत जिधर दीख पड़े वही उत्तर है इसलिये लंका से उत्तर हिमगिरि है जो पूर्व-पश्चिम समुद्र तक गया है। और हिमगि से उत्तर हेमकूटपर्वत है, यह भी पूर्व-पश्चिम समुद्र तक गया है, एवं इससे उत्त निषधपर्वत समुद्र पर्यन्त गया है। इन सबों के बीच २ में नौकाकार के देश हैं जिनको खण्डदेश कहते हैं। उनमें पहला भारतवर्ष है, इसके उत्तर का किं देश है, उससे उत्तर हरिवर्ष है एवं नीचे जो सिद्धपुर आजकल के अमेरिका है उससे उत्तर शृङ्गवान्पर्वत पूर्व-पश्चिम समुद्र पर्यन्त है, उसके उत्तर वैसही श्वेतगिरि और उसके उत्तर नीलगिरि है। इनके बीच २ में भी देश हैं। सिद्धपुर और शृंगवान के बीच देश को कुरुवर्ष कहते हैं, शृंगवान और श्वेतगिरि के बीच में हिरण्मयवर्ष तथा श्वेतगिरि और नीलगिरि के बीच में रम्यकवर्ष है। इसतरह पृथ्वी में ६ देशों का निरूपण हुआ। फिर यमकोटि जो पूर्व में कहा गया है वहाँ से एक माल्यवानपर्वत निषधपर निषधपर्वत से मिलता हुआ नीलगिरि तक पहुँचा है, उसके और समुद्र के

त्रिपु भूर्भुवस्स्वर्लोके प्वयंभूर्लोकः अस्मिन् भूर्लोके हि यतः लोको
एव अत्र लोक शब्दो भुवन जन वाचकः लोकस्तु भुवनेजने
लोकस्या अतोऽस्मिल्लोके भुवने पृथ्वी द्वीपवती द्वीपा विद्यमानाः
स्या अस्यास्त्वेति द्वीपवती ततस्तेषु द्वीपेषु जम्बूद्वीपोऽधिको
नेति । वर्षाणां नवकानां समहारो वर्ष नवकम् तस्य जम्बूद्वीपस्य
वर्क तद्वर्षनवकं तस्मिन् हे विप्र! श्रेष्ठं भारतं उच्यते ॥३९, ४०॥

भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक ये तीन लोक हैं इन तीनों लोकों में
भूर्लोक है इस भूर्लोक में ही मनुष्य रहते हैं इसलिये इस लोक
सातद्वीपवाली पृथ्वी नव देशों में बंटी हुई है उन सात द्वीपों में
बूद्वीप सब से बड़ा द्वीप है इस जम्बूद्वीप के नव खण्ड हैं उन में
। से श्रेष्ठ भारतवर्ष है ॥ ३९, ४० ॥

च मे भद्राश्व सातवां देश है, और पश्चिम में रोमदेश से गन्धमादन नाम का एक
ड़ निकलकर चले हैं। निषध से मिलता हुआ नील तक गया है। उसके और समुद्र
बीच में केतुमाल आठवां देश है एवं निषध, नील, माल्यवान और गन्धमादन इन
(महापर्वतों से घिरा हुआ इलावृत नाम का पृथ्वी का नवमखण्ड है। इसको
ग्लोग देवताओं का क्रीडा-भवन अर्थात् स्वर्गभूमि कहते हैं। इसतरह पृथ्वी के
लार्द्ध रूप जम्बूद्वीप में, भारतवर्ष, किम्पुरुष, हरिवर्ष, रम्यकवर्ष, हिरण्मयवर्ष
र कुरुवर्ष सीलोन से अमेरिका तक हैं और पूर्वसमुद्र के किनारे भद्राश्ववर्ष,
श्चिमीसमुद्र के तीर पर केतुमालवर्ष एवं बीच में मेरुपर्वत है, जिसके चारों
र दक्षिण निषध, पूर्व माल्यवान, उत्तर नीलगिरि, पश्चिम गंधमादन से घिराहुआ
लावृत नवमवर्ष स्वर्गभूमि है ये नव खण्ड हैं।

अब इस भारतवर्ष में भी नव खण्ड और सात कुलाचल हैं, जिनकी भी स्थिति
लिखता हूं। भारतवर्ष भरतजी के नाम से है यह कथा पुराणों में प्रसिद्ध है इसके बीच
में पहला ऐन्द्रखण्ड, दूसरा कशेरु, तीसरा ताम्रपर्ण, चौथा गभस्ति, पांचवां कुमारिकाखण्ड,
छठा नागखण्ड, सातवां सौम्य, आठवां वारुण और नवां गन्धर्वसंज्ञक-खण्ड है।
वर्णव्यवस्था और आश्रम-धर्म, केवल इस कुमारिका के निवासियों में ही है। शेष देशों मे
धर्माधर्माश्रमादि का विचार नहीं है। इस (भारतवर्ष) में माहेन्द्र, शुक्ति, मलय, ऋक्ष,
पारियात्र, सह्य और विन्ध्य ये सात कुलपर्वत हैं। इन पर्वतों के देश २ में भिन्न २ नाम हैं।

विकलः स्त्री पुत्रादि परिवारेभ्य उद्विग्नचित्तोजनः महत्वंचामहत्वं च न वेत्ति न जानाति लोकोजनःगतानुगतिकः येनास्मत्पितरोयाता येन याताः पितामहास्तेनमार्गेण गन्तव्यमितिमार्गादिसम्बंधीति पारमार्थिकः ईश्वर प्रणिधान रूप परमार्थसाधको लोकोजनोनेति ॥ ४४ ॥

स्त्री, पुत्र, धन परिवारादि की अभिलाषाओं में विह्वल चित्त मनुष्य गतानुगतिक होते हैं अर्थात् एक दूसरे के पीछे चलनेवाले होते हैं वे ईश्वर सम्बन्धी परमार्थी ज्ञान के साधक नहीं होते, इसलिये वे इसके महत्व व अमहत्व को नहीं जान सकते क्योंकि उन्हें अन्य विषय के मनन करने का अवकाश ही नहीं मिलता ॥ ४४ ॥

सारंच यदसारंच शास्त्रादेव हि मन्यते ॥
यस्य शास्त्रमयं चक्षुः सचक्षुष्मान्नचेतरः ॥ ४५ ॥

यत्सारं यदसारं च वस्तु तच्छास्त्रादेव हि यतो मन्यते ॥ अतः यस्य चक्षुः शास्त्रमयं भवति स चक्षुष्मान् नचेतरः ॥ ४५ ॥

जो सार वस्तु है और जो असार वस्तु है वह शास्त्र से ही जाना जाता है जिसका शास्त्रमय नेत्र है वही नेत्रवान् है दूसरा नहीं ॥ ४५ ॥

सारात्सारतरं विद्धि तीर्थं कापिल दैविकम् ॥
मा संशय महाभाग ! मदुक्ते त्वं कदाचन ॥ ४६ ॥

हे महाभाग ! कपिलोदेवोयस्य तत्कापिलदैविकम् तीर्थं सारात्सारतरं विद्धि जानीहि मदुक्ते मदीय कथने कदाचन मा संशय संदेहं मा कुरु ॥ ४६ ॥

हे महाभाग ! इस कपिल तीर्थ को उत्तम से उत्तम जानो, मेरे इस कथन में कभी सन्देह मत करो ॥ ४६ ॥

[illegible] पुनः [illegible] ॥
[illegible] ॥ ४१ ॥

[illegible] ॥४१॥

हे [illegible] तीर्थ हैं उन [illegible] तीर्थों में भी [illegible] है ॥ ४१ ॥

तेष्वपि प्रवरं केचिद्विमलज्ञानचक्षुषः ॥
सारात्सारतरं प्राहुः कपिलाश्रममुत्तमम् ॥ ४२ ॥

केचिद्विज्ञानचक्षुषः विमलमेव चक्षुर्येषान्ते तेष्वपि सर्वतीर्थेषु प्रवरं सारात्सारतरमनुत्तमं कपिलाश्रममुत्तमं प्राहुः ॥ ४२ ॥

निर्मल दृष्टि से देखने वाले अनेक महर्षि लोग उन सर्व तीर्थों में सारात्सार इस उत्तम कपिलाश्रम को ही कह गए हैं॥४२॥

एतत्तीर्थस्य माहात्म्यं कलौ जानन्ति केचन ॥
जनाः सर्वे नजानन्ति महामोहान्धचक्षुषः ॥ ४३ ॥

कलौ कलियुगे एतत्तीर्थस्य माहात्म्यं केचनजना जानन्ति महामोहान्धचक्षुषः दारा पुत्र मित्र धन कुटुम्ब परिवारादिरूपोऽयं संसार एवमहामोहः अस्मिन्निमग्ने चक्षुर्येषान्ते महा मोहान्धचक्षुषोभवन्ति ते सर्वे न जानन्तीति ॥ ४३ ॥

कलियुग में इस तीर्थ के माहात्म्य को कोई कोई मनुष्य जानते हैं स्त्री पुत्र मित्र धन कुटुम्ब परिवारादि रूप संसार के महामोह से अन्धचक्षु हैं जिनको वे नहीं जानते ॥ ४३ ॥

महत्त्वं चामहत्वंच नवेत्ति विकलोजनः ॥
गतानुगतिकोलोकोनलोकः पारमार्थिकः ॥ ४४ ॥

विकलः स्त्री पुत्रादि परिवारेभ्य उद्विग्नचित्तोजनः महत्वंचामहत्वं च न वेत्ति न जानाति लोकोजनःगतानुगतिकः येनास्मत्पितरोयाता येन याताः पितामहास्तेनमार्गेण गन्तव्यमितिमार्गावलम्बीति पारमार्थिकः ईश्वर प्रणिधान रूप परमार्थसाधको लोकोजनोनेति ॥ ४४ ॥

स्त्री, पुरुष, धन परिवारादि की अभिलाषाओं में विह्वल चित्त मनुष्य गतानुगतिक होते हैं अर्थात् एक दूसरे के पीछे चलनेवाले होते हैं वे ईश्वर सम्बन्धी परमार्थी ज्ञान के साधक नहीं होते, इसलिये वे इसके महत्व व अमहत्व को नहीं जान सकते क्योंकि उन्हें अन्य विषय के मनन करने का अवकाश ही नहीं मिलता ॥ ४४ ॥

सारंच यदसारंच शास्त्रादेव हि मन्यते ॥
यस्य शास्त्रमयं चक्षुः सचक्षुष्मान्नचेतरः ॥ ४५ ॥

यत्सारं यदसारं च वस्तु तच्छास्त्रादेव हि यतो मन्यते ॥ अतः यस्य चक्षुः शास्त्रमयं भवति स चक्षुष्मान् नचेतरः ॥ ४५ ॥

जो सार वस्तु है और जो असार वस्तु है वह शास्त्र से ही जाना जाता है जिसका शास्त्रमय नेत्र है वही नेत्रवान् है दूसरा नहीं ॥ ४५ ॥

सारात्सारतरं विद्धि तीर्थं कापिल दैविकम् ॥
मा संशय महाभाग ! मदुक्ते त्वं कदाचन ॥ ४६ ॥

हे महाभाग ! कपिलोदेवोयस्य तत्कापिलदैविकम् तीर्थं सारात्सारतरं विद्धि जानीहि मदुक्ते मदीय कथने कदाचन मा संशय संदेहं मा कुरु ॥ ४६ ॥

हे महाभाग ! इस कपिल तीर्थ को उत्तम से उत्तम जानो, मेरे इस कथन में कभी सन्देह मत करो ॥ ४६ ॥

मार्गं माह्य मासेषु सर्वतीर्थेषु तीर्थ राट् ॥
मोक्षैक हेतुं विज्ञाय गोपितोयं सुरैः किल ॥ ४७ ॥

मासेषु द्वादशसु चैत्रादिषु मासानाम्मार्गशीर्षो हमिति भगवदुक्त मार्गशीर्ष इव सर्वतीर्थेषु प्रयागादिषु अयं कपिलाश्रमस्तीर्थराट् तीर्थराजः इमं मोक्षैक हेतुं विज्ञाय किल सुरैर्गोपितः ॥ ४७ ॥

चैत्रादि बारहों मासों में सब से श्रेष्ठ जैसे मार्गशीर्ष मास है वैसे ही प्रयागादि सब तीर्थों में श्रेष्ठ यह तीर्थराज कपिलाश्रम है, देवताओं ने मोक्ष प्राप्ति का निदान इसी को समझ, इसलिये गुप्त करदिया ॥४७॥

नास्य तीर्थस्य माहात्म्यं वक्तुं शक्योस्मिषड्मुखैः ॥
शेषोप्यशेषं स्वमुखैर्निरशेषं वक्तुमक्षमः ॥ ४८ ॥

अस्मिन्पद्ये अशेषमेकत्र पुनरशब्दान्तरे निरशेषं पदार्थं वाचिपदद्वयं युक्तंनभाति मन्मतेतु यथा षड्मुखैः कार्तिकेयो वक्तुमशक्यस्तथैव शेषोपि स्वकीयै स्साहस्र मुखैर्वक्तुमशक्य इतिभावद्योतनार्थं निरशेषमितिस्थलेसहस्रै रितिपाठोभवेचदा साधु पाठ इति तेन ॥

अस्य तीर्थस्य माहात्म्यमहं षड्मुखैर्वक्तुंनशक्यो स्मि मम का कथा शेषोपि सहस्रैस्स्व मुखैरशेषं वक्तुमक्षम इति स्कन्दोक्ति स्समीचीना ॥ ४८

स्कन्दजी कहते हैं कि मैं अपने ६ मुखों से इस तीर्थ के माहात्म को नहीं कह सक्ता, तो मेरी क्या गिन्ती है जबकि साक्षात् शेष भी अपने हज़ार मुखों से इस के पूर्ण माहात्म्य को कहने में असमर्थ है ॥४८॥

तथापि शंसती कर्तुं जिह्वा मामभिधासति ॥
तीर्थरत्नस्य माहात्म्यं प्रवक्ष्यामि यथामति ॥ ४९ ॥

तथापि शंसतीकर्तुं शंसितुं जिह्वा मां अभिधासति प्रेरयति अतः ति तीर्थरत्नस्य महात्म्यं प्रवक्ष्यामि कथयिष्यामि ॥ ४९ ॥

तथापि कथन करने के लिए मेरी जिह्वा मुझे प्रेरणा करती है इसलिए जैसी मेरी बुद्धि है तदनुकूल इस तीर्थ के माहात्म्य को मैं कहूँगा ॥ ४६ ॥

एवं महाभाग! महीतले मलं विनाशयत्तीर्थवरं महोज्ज्वलम् ॥ विभाति यद्दर्शनतोऽपिमानवाः परम्पदं यान्ति विमान मानवाः ॥५०॥

हे महाभाग ! महीतले एवं एतादृशं महोज्ज्वलं महादीप्तं तीर्थवरं मलं पापं विनाशयन् विभाति राजते यद्दर्शनतो यस्यदर्शनमात्रेण मानवाः साधारण मनुष्या अपि विमानमानवास्सन्तः अर्थाद्विमानमारुह्य परम्पदं स्वर्गतिं यान्ति ॥ ५० ॥

हे महाभाग ! इस पृथ्वीतल में इस प्रकार पाप को विनाश करता हुआ महोज्ज्वल यह तीर्थराज विराजमान है जिसके दर्शन मात्र से साधारण मनुष्य भी विमान पर आरूढ़ होकर परमधाम को चले जाते हैं ॥ ५० ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे स्कन्दागस्त्यसम्वादे कपिलायतनमाहात्म्ये तीर्थवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः।



तृतीयाध्यायकथारंभः ।



(सूत उवाच)

इत्युक्त्वा पुनरेवाह महिमानमथादितः ॥
कपिलायततीर्थस्य पार्वतीनन्दनोमुनिः ॥ १ ॥

अथ पार्वतीनन्दनो मुनिः स्कन्द इत्येवमुक्त्वा कपिलायत तीर्थस्य महिमानमादितः पुनरेवाह कथयामास ॥ १ ॥

इस प्रकार पार्वतीनन्दन स्कन्दजी ने पूर्वाध्याय की कथा कहकर पुनः कपिलायत (कोलायत) तीर्थ की महिमा को आदि से कहना आरंभ किया ॥ १ ॥

शृणु द्विज ! यथैवेदं तीर्थं कापिलसंज्ञकम् ॥
उद्धारं पातकारण्यदावानलसमप्रभम् ॥ २ ॥

हे द्विज ! पातकारण्य दावानलसमप्रभम् यथैवेदं कापिलसंज्ञकम् तीर्थमस्ति तथैवास्योद्धारमपित्वं शृणु ॥ २ ॥

हे द्विज ! पापरूपी वन को भस्म करनेवाले दावानल (वनाग्नि) के समान जैसा यह कपिलतीर्थ है उसी प्रकार इसका उद्धार भी मैं कहता हूं, सुनो ! ॥ २ ॥

सृष्ट्यादौ ब्रह्मणः पुत्रः कर्दमोऽभूत्प्रजापतिः ॥
तस्य स्वायंभुवमनुः पत्न्यासीत्पतिव्रता ॥ ३ ॥

(सृष्ट्यादावितिस्पष्टार्थं पद्यम्)

सृष्टि के आदि में ब्रह्मा के पुत्र कर्दमऋषि प्रजापति हुए उनकी स्त्री स्वयंभू मनु की पुत्री हुई जो पतिव्रता अर्थात् स्त्रियों के जो पतिव्रतादि धर्म हैं उनको पालन करनेवाली थी ॥ ३ ॥

तस्यां पुत्रः समभवत् कर्दमस्य प्रजापतेः ॥
श्रीविष्णोरंशसम्भूतः कपिलाख्यः परः पुमान् ॥ ४ ॥

तस्यां स्वायंभुवसुतायां श्रीविष्णोरंशसम्भूतः परः पुमान् परमपुरुषः कपिलाख्यः भगवान्कपिलः प्रजापतेः कर्दमस्य पुत्रः समभवत् ॥ ४ ॥

उस स्वायंभुव मनु की पुत्री से प्रजापति कर्दमऋषी के पुत्र श्रीविष्णुभगवान् का अंश परमपुरुष भगवान् कपिल उत्पन्न हुए ॥ ४ ॥

स्व मात्रे देवहूत्यैषः सांख्यं योगं सविस्तरम् ॥
प्रोवाच जगदुद्धारकारकं करुणाकरः ॥ ५ ॥

यः करुणाकरः कृपालुः भगवान्कपिलः स्वकीये अत्यल्पे-वयसि स्वमात्रे देवहूत्यै जगदुद्धारकारकं सांख्ययोगं च सविस्त-रं प्रोवाच उपदिष्टवान् ॥ ५ ॥

जो करुणाकर भगवान् कपिलजी ने अपनी थोड़ी अवस्था में ही अपनी माता देवहूती को संसारोद्धारकारक सांख्य और योग का उपदेश दिया ॥ ५ ॥

गुणाँस्तस्य ह्यसंख्येयान्नवाङ्मनसगोचरान् ॥
वेदोन वक्तुं शक्तः स्यात्किमुतान्येविपश्चितः ॥ ६ ॥

हि यतस्तस्य कपिलस्य अवाङ्मनसगोचरानसंख्येयान् गुणान् वेदो वक्तुं न शक्तः स्यात् अतोन्ये विपश्चितोविद्वान्सः किमुत कथं वक्तुं समर्था भविष्यन्ति "यत्रवाचां गति र्नास्ति मनसश्चापि तादृशी। एवं भूतान् गुणान्वक्तुं वेदोपिनभवेदलम्" इति ॥ ६ ॥

उस महात्मा कपिल के मनवचनातीत असंख्य गुणों को वेद भी नहीं कह सकता तो और विद्वानों की क्या कथा है अर्थात् वे कैसे वर्णन कर सकेंगे ॥ ६ ॥

मात्रे चाध्यात्मिकीं विद्यां दत्त्वानुज्ञाप्य मातरं ॥
स्वच्छन्दं तदनुज्ञातः प्रागुदीचीं दिशं ययौ ॥ ७ ॥

भगवान् कपिलः मात्रे देवहूत्यै आध्यात्मिकीं सांख्ययोग रूपिणीं विद्यां दत्त्वा चकारात् पुनर्मातरं अनुज्ञाप्य इतस्ता- तस्यां विद्यायां नियुज्य तदनुज्ञातः मातुराज्ञया स्वच्छन्दं प्रागु- दीचीं दिशं ययौ गतवान् ॥ ७ ॥

भगवान् कपिल माता देवहूती को अध्यात्म-विद्या का उपदेश देकर उनकी आज्ञा लेकर स्वच्छन्दता से अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्यादि से निवृत्त हो माया मोहादि सब सांसारिक बन्धनों को तोड़कर पूर्व उत्तर की दिशा में चले गये ॥ ७ ॥

गच्छन्पथिददर्शाग्रे समुद्रं वालुकामयम् ॥
तीर्थभूतं परंधाम धरिण्याननसंनिभम् ॥ ८ ॥

पथि मार्गे गच्छन् अग्रे तीर्थभूतं परंधाम उत्कृष्टं स्थानं धरिण्याः आनन सन्निभम् सदृशम् वालुकामयं समुद्रं ददर्श ॥ ८ ॥

मार्ग में जाते हुए कपिलजी ने आगे परमोत्तम स्थान, पृथ्वी के मुख के सदृश वालुकामय समुद्र को देखा ॥ ८ ॥

नाना मृगगणाकीर्णं नाना वृक्षलतायुतम् ॥
नाना विहगसंघुष्टं नाना मुनि निषेवितम् ॥ ९ ॥

दृष्ट्वा विचारयामास कपिलः श्रीनिकेतनः ॥
इदं स्थानं परं दिव्यं तपसः सिद्धिदायकम् ॥ १० ॥

इत्युक्त्वा संचकारेह तन्मनोहरतागुणात् ॥
लोकानुग्रहकाम्यार्थं कल्पान्तं तप आस्थितः ॥ ११ ॥

(सरलार्थानीमानि पद्यानि)

श्रीनिकेतन भगवान् कपिलजी अनेक प्रकार के मृगों से व्याप्त, अनेक प्रकार के वृक्ष लताओं से युक्त, विविध पक्षियों से कूजित और मुनिगणों से सेवित उस वालुकामय सामुद्रिक प्रदेश को देख कर विचारने लगे और तपस्या की सिद्धि देनेवाला परमरम्य यह स्थान है ऐसा कह कर उसकी मनोहरताई से आकर्षित होकर संसार के अनुग्रह की कामना से कल्पान्त तपस्या करने के लिए बैठ गये ॥ ९, १०, ११ ॥

एकया चाथमूर्त्याच प्रागुदीचीं दिशं ययौ ॥
अतस्तद्भुवनेख्यातं कपिलालयनामकम् ॥ १२ ॥

महात्मा कपिलो नहि पूर्णांशेन तत्रावतिष्ठत् अंशेन तत्र कल्पान्तं तपसिस्थितः अंशेनैकामन्यांमूर्तिंविधाय तयैकयामूर्त्या पूर्वसंकल्पितां प्रागुदीचीं दिशं ययौ अतो भुवने लोके तत् स्थानं कपिलालयनामकं ख्यातं प्रसिद्धम् ॥ १२ ॥

भगवान कपिलजी अपनी पूर्ण कला से उस वालुकामय प्रदेश में आकल्पान्त तपस्या करने नहीं बैठे किन्तु एक मूर्ति से वहाँ कल्पान्त तप करने के लिये बैठे और दूसरी मूर्ति अंशात्मिका धारण कर अपने पूर्व संकल्पित पूर्वोत्तर दिशा को गये इसलिए तबसे यह स्थान कपिलालय नाम से संसार में विख्यात हुआ ॥ १२ ॥

तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं कथं वक्तुमहंक्षमः ॥
सिद्धेशाधिष्ठितं यस्मात्कलिकालमलापहम् ॥ १३ ॥

यस्मात्कारणात्सिद्धेशेन भगवता कपिलेनाधिष्ठितं तत्तीर्थं कलिकालमलापहमस्ति अतस्तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं वक्तुं वर्णयितुमहं कथं क्षमः समर्थः इति ॥ १३ ॥

सिद्धेश (भगवान कपिल मुनि) का निवासस्थान जिस सिद्धाश्रम से कलिकाल के पापों का नाश करनेवाला है उस तीर्थ के महात्म को यथावत् वर्णन करने में मैं असमर्थ हूँ ॥ १३ ॥

नारायणाश्रमं पुण्यं यथा बदरिकाश्रमम् ॥
अरण्येस्मिन्महापुण्यं तथेदं कपिलाश्रमम् ॥ १४ ॥

(स्पष्टार्थः)

जैसे नारायणाश्रम बदरिकाश्रम पवित्रधाम है तैसे इस जांगलिक प्रदेश में यह कपिलाश्रम महापवित्र स्थान है ॥ १४ ॥

अस्य तीर्थस्य माहात्म्यं वक्तुं नालं पितामम ॥
तथापि वर्णयेहंते किंचित्किंचित्समासतः ॥ १५ ॥

अस्मिन्पद्ये कपिलाश्रमस्यवर्णनातीतं महत्वंसूचयति यथा-अस्य तीर्थस्य माहात्म्यं ममपिता शंकरोपि वक्तुंनालं नहिसमर्थः तथाप्यहं ते तुभ्यं समासतः संक्षेपतः किंचित्किंचिद्वर्णये ॥ १५ ॥

इस तीर्थ के माहात्म्य को मेरे पिता भी वर्णन करने में समर्थ नहीं हैं तथापि मैं तुम्हारे लिये संक्षेप से कुछ २ वर्णन करता हूँ ॥ १५ ॥

अत्र तीर्थे गन्तुमना यदाभवति मानवः ॥
तदैव तस्य पापानि मूर्छितानि भवन्तिहि ॥ १६ ॥

मानवः अस्मिन्तीर्थे यदा गंतुमना भवति तदैव तस्य पापानि मूर्छितानि भवन्ति हि निश्चयार्थकोऽव्ययः ॥ १६ ॥

मनुष्य जब इस पवित्र तीर्थ में जाने की इच्छा करता है उसी समय उस की इच्छामात्र ही से उसके सकल संचित पाप मूर्छित हो जाते हैं ॥ १६ ॥

विनिर्याति यदा गेहात्स्नेहात्स्नातुं [illegible] धन ।।
मृतानि पापजातानि तस्य सद्येव नसंशयः ।। १७ ।।

(स्पष्टार्थः)

हे तपोधन ! जब प्रेमपूर्वक तीर्थ स्नान करने जाने के लिये मनुष्य अपने गृह से बाहर होता है तब उसके सब पाप-समूह मृत (नष्ट) हो जाते हैं इस में संशय नहीं ।। १७ ।।

एतत्तीर्थस्य सीमायां नविशेत्पापपूरुषः ।।
ततोयं निर्मलो भूत्वा तीर्थ सीमां प्रपश्यति ।। १८ ।।

(स्पष्टम्)

पापी पुरुष इस तीर्थ की सीमा में न प्रवेश करे इसलिये सीमा से पहले ही उस के पाप नष्ट हो जाते है और वह निष्पाप होकर तीर्थ सीमा को देखता है ।। १८ ।।

मासंशयिष्ठां मनसि सिद्धेशाधिष्ठितांभुवम् ।

सिद्धेशाधिष्ठितां भुवम् मनसि मा संशयिष्ठाः ।

सिद्धेश भगवान् कपिल मुनि की यह तपोभूमि है इस में किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना ।

योयं कर्त्तुमकर्त्तुम्वा ह्यन्यथा कर्तुमीश्वरः ।। १९ ।।
तस्येयं तपसोभूमिः सर्वदेवैरधिष्ठिता ।।

माहात्म्य श्रवणे चास्या नैव कार्या विचारणा ।। २० ।।

योयं भगवान्कपिलः इति निश्चयेन कर्तुमकर्तुम्वान्यथा कर्त्तुमीश्वरः समर्थः तस्येयं सर्वदेवैरधिष्ठिता तपसोभूमिः अस्या माहात्म्यश्रवणे च विचारणा नैव कार्य्या यतश्श्रवणेपि पुण्या तिशय्यमितिभावः ।। २० ।।

जो भगवान् कपिल संभव को असंभव और असंभव को संभव अथवा अन्य प्रकार से ही कोई विशेष रचना कर सकने में समर्थ हैं उन्हीं सिद्धेश्वर की यह तपोभूमि है जो सब देवताओं से सेवित है इस के माहात्म्य सुनने में कभी आलस्य नहीं करना चाहिये अर्थात् कपिलाश्रम तीर्थ पर जाना और स्नान ध्यान करना तो अतिपुण्य कार्य है ही परन्तु इसकी कथा के श्रवण मात्र से भी अनन्त पुण्य का लाभ होता है ॥ २० ॥

कलिकालविमूढैर्हि विष्णुमायाविमोहितैः ॥
सर्वतीर्थललामं तद्गन्तुं नैवात्रशक्यते ॥ २१ ॥

पूर्वश्लोके माहात्म्यश्रवणमुक्तंतद्धेतुं दर्शयति कलिकालेति हि यतः विष्णुमायाविमोहितैः कलिकालविमूढैर्नरैः सर्वतीर्थललामं सर्वतीर्थशिरोरत्नं तत्तीर्थं गन्तुं नैवशक्यते अतस्तन्माहात्म्यश्रवणमेवतैः कर्तव्यमितिभावः ॥ २१ ॥

(१) कपिलायतन तीर्थ बीकानेर राज्य की राजधानी में इस राज्य के स्थापना काल से पूर्व ही प्राचीनकाल से विद्यमान चला आरहा है। जिस स्थान पर इस तीर्थ की शुभ उपस्थिति है यह उक्त राज की राजधानी से पहले एक ऐसा भयंकर दरजे में था कि जहांतक प्रत्येक सर्वसाधारण-जन का जा सकना अति दुर्लभ था। क्योंकि यह एक निर्जल एवं निर्जन-स्थान था। इसके निकट में न तो कोई ग्राम था और न कोई नगर। जंगली आदमी तथा हिंसक जानवरों का ही यहां पर अधिकार निवास था। कभी कोई यात्री वह भी साधु सन्यासी अथवा योगी जिनको अपने द्वारा सुख व जीवन-मरण का कुछ भी विचार नहीं होता था यहां आने का साहस करते थे।

जब से बीकानेर राज्य की राजधानी हुई है तब से यहां के श्री-मन-भान [illegible] सन्यासियों के परम भक्तालु, धर्मप्रेमी, महाप्रतापी व पुण्यशील शासक नरेशों ने अपने पूर्ण अधिकार प्राप्ति के साथ २ शनै २ इस पवित्र कपिलायतन पुण्य-स्थान के लिये भी ध्यान कर [illegible] आरंभ कर दी। और इस समय वर्तमानकाल में तो परमात्मा की कृपा से हमारे धीर, वीर, अतुल प्रतापी, श्री भक्त-भक्त, पुण्यशील महाराज [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हिज हाईनेस महाराजा श्री १०८ श्री [illegible] [illegible] बहादुर, जी सी एस आई., जी.सी.आई.ई., जी सी.वी.ओ., जी.बी.ई., [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] बादशाह की तरफ [illegible]

इस तीर्थ के महात्म्य को श्रवण करने में भी आलस्य नहीं करना चाहिये इसका हेतु कहते हैं कि श्रीविष्णुभगवान् की माया से मोहित मूढ़नर इस कलिकाल में सब तीर्थों के शिरोरत्न कपिलाश्रम को नहीं जा सकते हैं। इसलिये उनको इसका माहात्म्य श्रवण ही लाभकारी होगा ॥ २१ ॥

तीर्थस्य नामश्रवणाद्वचनोच्चारणादपि ॥
विलयं यान्ति पापानि हिमानीव तपोन्तिके ॥ २२ ॥

अस्मिन्पद्ये महात्म्यश्रवणफलं दर्शयति यथा तीर्थस्य कपिलायतनस्य नामश्रवणात् वचनेन तन्नामोच्चारणादपि तपोन्ति के हिमानिः हिमसंहतिरिव पापानि विलयं नाशं यान्ति अर्थात् केवल नामश्रवणादुच्चारणाद्वा पापानां नाशस्तदा समग्र महात्म्यश्रवणस्य का कथेति तात्पर्य्यम् ॥ २२ ॥

इस श्लोक में भगवान् स्कन्ददेव माहात्मश्रवण का फल बताते हैं कि जिस तीर्थ के नाम श्रवण से या नामोच्चारण से ही ग्रीष्म ऋतु में हिमसंघति के समान पापराशि विलय को प्राप्त होती है। जब नाम श्रवण और नामोच्चारण में यह फल होता है तो समग्र माहात्म्य श्रवण करने की क्या बात है ॥ २२ ॥

---

* से उक्त पुण्यस्थान का महत्व पूर्णरूप में प्रकट होगया है। वहां पर यात्रियों के लिये अनेक प्रकार के मन्दिर श्री राज की ओर से और कई एक देशवासी धनाढ्य व्यक्तियों की ओर से स्थापित किये गये हैं और यात्रियों के सुभीते के लिये धर्मशालाएं निर्माण होनी प्रारंभ होगई हैं। और साथ में यह एक बड़ा ही परोपकार का विषय है कि श्री प्रभुदानाजी ने यात्रियों के सुभीते के लिये अमोघ परिश्रम व अधिकतर धनव्यय करके बीकानेर से कपिलायतन तीर्थस्थान तक एक रेलवे-लाइन भी खोलदी है कि जिससे सांप्रतिकाल में देश देशान्तरों के सभी यात्रियों को तीर्थ स्नानादि पुण्य प्राप्ति की बड़ी सुगमता हो गयी है।

सर्वपापौघहरणं सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥
पुण्यदं सर्वयज्ञानां महादानफलप्रदम् ॥ २३ ॥

(भाषार्थम्)

यह तीर्थ सब पातकियों को हरण करता है, सब तीर्थों का फल देता है, सब यज्ञों का पुण्य देनेवाला है, और सब महादानों का फल देनेवाला है ॥ २३ ॥

इदं सत्ययुगे ख्यातं कलौ देवैः सुगोपितम् ॥
त्रेतायान्तु प्रयागाख्यं तीर्थं ख्यातं धरातले ॥ २४ ॥
द्वापरे पुष्करं नाम कलौ गङ्गैव केवलम् ॥
इत्थं युगानुरोधेन सन्ति तीर्थानि भूतले ॥ २५ ॥

इदं कपिलाश्रमं सत्ययुगे ख्यातं प्रसिद्धमासीत् कलौ देवैः सुगोपितम् सुगोप्यपरक्षितम् ॥ कलौ कायक्लेशादिकठिनतपसामाचरणेऽसमर्थाजनाः स्वल्पायासेन बहुपुण्यफलामादयैव गत्वास्नात्वा देवं ध्यात्वा स्वांस्वामभीप्सितां गतिं यास्यन्त्यतोऽन्येषां तीर्थानां देवानांच प्रभावोऽल्पतमोभविष्यतीतिबुद्ध्यैवदेवैः सुगोपितमितिभावः ॥ पुनः कलियुगे गुप्तमपितत्तीर्थं परमकारुणिकेन लोकानुग्रहकारिणा भगवता स्कन्देन प्रकटीकृतमिति ॥ एवं सत्ययुगे कपिलतीर्थस्य प्रसिद्धयनन्तरं त्रेतायान्तु प्रयागाख्यं तीर्थं ख्यातं स्वांप्रसिद्धिमगात्ततो द्वापरे पुष्करनाम तीर्थं प्रसिद्धम् ॥ कलौतु कपिलतीर्थस्य गुप्तत्वात्केवलं गङ्गैव स्वांप्रख्यातिंगता । इत्थं युगानुरोधेन भूतले तीर्थानि सन्ति ॥ २४, २५ ॥

यह कपिलाश्रम सत्ययुग में प्रसिद्ध हुआ था परन्तु कलियुग में देवताओं ने गुप्त कर दिया इसका आशय यही हो सकता है कि कलियुग में मनुष्य शरीर को क्लेश देकर कठिन तपस्याओं को करने में असमर्थ

होंगे और थोड़े परिश्रम से ही अत्यधिक पुण्य का लाभ होने से इसी तीर्थ में स्नान कर और इसी तीर्थ के देवता का ध्यान कर अपनी २ अभीप्सित गति को प्राप्त करलेंगे इसलिए और तीर्थ तथा देवताओं का प्रभाव कम हो जायगा। परन्तु परमकरुणाकर लोकानुग्रहकारी भगवान् स्कन्ददेव ने कलियुग के वास्ते इस गुप्त तीर्थ को प्रकट कर दिया। इसी प्रकार अर्थात् जैसे कि सत्ययुग में कपिलाश्रम प्रसिद्ध था वैसाही त्रेता में प्रयाग प्रसिद्ध हुआ और द्वापर में पुष्करराज की प्रसिद्धि हुई परन्तु कलियुग में कपिलतीर्थ गुप्त होने से गंगा ही का केवल महात्म्य रहा। इस प्रकार युगक्रम से पृथ्वी में तीर्थों की प्रसिद्धि हुई॥ २४, २५॥

सर्वतीर्थफलावाप्तिकारणं परमं त्विदम्॥
तावत्प्रभा तारकाणां यावत्सूर्यो न दृश्यते॥ २६॥
तावन्ति सर्वतीर्थानि यावद्वेतन्नमन्यते॥

परमयुत्कृष्टमिदं कपिलतीर्थन्तु सर्वतीर्थफलावाप्तिकारणम् यत्र दृष्टान्तोयथा यावत्सूर्योनदृश्यते अर्थात्सूर्योदयोनभवति तावत्तारकाणामल्पप्रभाप्रदातॄणां नक्षत्राणां प्रभा जागर्ति तथैव यावदेतत्तीर्थनमन्यते तावन्ति सर्वतीर्थानीति, अर्थान्मन्यमानेऽस्मिन्तीर्थे शेषाणां सर्वेषां तीर्थानाम्प्रभावोल्पतमोभवतीति॥

यह उत्तम तीर्थ सब तीर्थों के फल प्राप्ति का हेतु है. यहां एक दृष्टान्त है कि जबतक सूर्योदय नहीं होता तबतक ही अल्प प्रकाशक लघु तारों की उज्ज्वलता आकाश में व्याप्त रहती है और सूर्योदय होनेही सब तारागण मन्द हो जाते हैं वैसे ही जब तक इस तीर्थ का ज्ञान नहीं होता तभी तक और सब तीर्थों का महत्व प्रज्वलित रहता है इस तीर्थराज के महत्व का ज्ञान होनेही सब तीर्थों का महत्व मन्द होजाता है॥

अथ किञ्चित्तु महिमा तवाग्रेवर्ण्यते मया ॥ २७॥
सकलो वेदविदुषां यतोवाचामगोचरः ॥

अथ तवाग्रेतु मया किंचिन्महिमा वर्ण्यते ॥ २७॥ यतः सकलः सम्पूर्णमहिमा वेदविदुषां वेदविदामपिवाचामगोचरः वेदविदोपिवक्तुमसमर्था इति भावः ॥

अब तुम्हारे सन्मुख इस तीर्थ की महिमा का कुछ वर्णन में करता हूं ॥ २७ ॥ क्योंकि समग्र वर्णन वेदविज्ञाता भी नहीं कर सक्ते ॥

अन्यत्र दशभिर्वर्षैर्यत्पुण्यं जायते नृणाम् ॥ २८॥
तदेकेन दिनेनैव जायते वसतामिह ॥

अन्यत्रान्यस्मिन्तीर्थे नृणां दशभिर्वर्षैर्यत्पुण्यं जायते ॥२८॥ इहवसतां तेषां तदेकेनैव दिनेन जायते ॥

और सब तीर्थों का १० वर्ष सेवन करने से जो फल मनुष्य प्राप्त करते है वह यहां एक दिन के सेवन से ही प्राप्त होजाता है ॥

अविमुक्ते ज्ञानदान्मुक्तिः पुंसां प्रजायते ॥ २९ ॥
ज्ञानम्विनाप्यत्र मुक्तिः प्राप्यते नियतं नरैः ॥

अविमुक्ते वाराणस्यां ज्ञानदानात्पुंसां मुक्तिः प्रजायते ॥२९॥ अत्र कपिल तीर्थे ज्ञानम्विनापि नरैर्नियतं निश्चयेन मुक्तिः प्राप्यते ॥

अविमुक्त वाराणसी क्षेत्र में श्रीविश्वनाथ के ज्ञानोपदेश से मनुष्य की मुक्ति होती है " काश्याम्मरणान्मुक्तिः " यह जो प्रख्यात वाक्य है इसका भाव यह है कि काशी में मरनेवाले को भगवान् शंकर जी ज्ञान देकर मुक्त कर देते है गोस्वामी तुलसीदासजी भी अपने रामचरित-मानस में लिखते हैं कि " महामंत्र जेहि जपत महेसू। काशी मरण मुक्ति उपदेसू " अन्यथा " ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः " अर्थात् ज्ञान

बिना मुक्ति नहीं होती इस श्रुति का व्यभिचार होगया : परन्तु इस कपिलतीर्थ में ज्ञान बिना ही मुक्ति प्राप्त होजाती है ॥

मुक्तिभूमिरियं नित्या यज्ञभूमिरियं परा ॥ ३० ॥
योगभूमिरियं शुद्धा कामिनां भोगभूमिका ॥
महापातकयुक्तानां पापिनां पापमोचिका ॥ ३१ ॥
सदाचारवतां पुंसां परमास्वर्गभूमिका ॥
जपानुष्ठाननिष्ठानां जपसिद्धिकरी सदा ॥ ३२ ॥
तपस्विनां महाभाग ! तपसिद्धिप्रदायिनी ॥
भगवद्भक्तिकामानां महाभक्तिकरीपरा ॥ ३३ ॥
कासाहो कामना लोके यात्र न प्राप्यते नरैः ॥
सांख्ययोगमयीभूमिः सांख्याचार्याश्रितायतः ॥ ३४ ॥

(स्पष्टार्था इमे श्लोकाः)

हे महाभाग ! इस कपिलतीर्थ की यह भूमि नित्या अर्थात् अनपायिनी मुक्ति को देनेवाली परा उत्तमा यज्ञभूमि शुद्धा योगभूमि और विलासियों की भोगभूमि है एवं महापातकियों के पापों का नाश करने वाली है तथा सदाचारियों की परमा स्वर्गभूमि है जपानुष्ठान में निष्ठ मनुष्यों के जप यज्ञ की सिद्धि करनेवाली, तपस्वियों के तप की सिद्धि देनेवाली है, और भगवद्भक्तिकामनावालों को परा भक्ति देने वाली है कौन सी ऐसी कामना है जिसको यहां मनुष्य नहीं प्राप्त कर सकता ? यह सांख्याचार्य कपिलमुनि की आश्रयभूमि है इसलिये सांख्ययोगमयी है ॥ ३०, ३१, ३२, ३३, ३४ ॥

अत्र सद्गुरुणा प्रोक्तं विना ज्ञानमवाप्यते ॥
नित्या नित्यविवेकोहि तीर्थस्यास्य प्रसादतः ॥ ३५ ॥

किम्वहूक्तया मुनिश्रेष्ठ ! विदुषामग्रतः सदा ॥
एतादृक् पाप हृत्तीर्थं नभूतं न भविष्यति ॥ ३६ ॥

(स्पष्टार्थाविमर्शौ श्लोकौ)

इस तीर्थ में गुरु के उपदेश विनाही सद्ज्ञान की प्राप्ति होती है और इस तीर्थ के प्रसाद से संसार में क्या नित्य है ? क्या अनित्य है ! इसका भी विवेक हो जाता है । हे मुनिश्रेष्ठ ! विद्वानों के सम्मुख बहुत कहने की आवश्यकता नहीं होती, सारांश यह है कि ऐसा पापहारी तीर्थ आजतक न हुआ न भविष्य में होगा ॥ ३५, ३६ ॥

समीरणोपि संमृज्य कपिलायतनाम्बुभिः ॥
नाधन्यं स्पृशते लोके नरं मूढं सकल्मषम् ॥ ३७ ॥
कपिलालय संयोगाद्यतोऽसौ पापहामतः ॥
तस्माद्विहाय पाप्मानं याति वायुस्त्वरान्वितः ॥ ३८ ॥

(स्पष्टार्थाविमर्शौ)

वायु भी इस कपिलायतन के जल से संमार्जित होकर निन्दित तथा मूर्ख और पापयुक्त मनुष्य को स्पर्श नहीं करती ॥ ३७ ॥ क्योंकि कपिलालय के संयोग से वह पापनाशक हो जाता है इसलिए पापी मनुष्य को छोड़कर वेग से आगे चली जाती है ॥ ३८ ॥

कपिलालय संस्था ये प्राणिनः स्थिरजङ्गमाः ॥
सर्वे मुक्तिमवाप्स्यन्ति सत्यं जानीहि सत्तम ॥ ३९ ॥

(स्पष्टार्थः)

हे सत्तम ! कपिलालय में रहनेवाले जितने स्थिर और जंगम प्राणी हैं वे सब मुक्त हो जाते हैं इस बात को सत्य जानो ॥ ३९ ॥

इदं गोप्यं कृतं तीर्थं दिवौकोभिः पुरातने ॥
ततः केचिन्न जानन्ति विनाविष्णोः प्रसादतः ॥ ४० ॥

इदं तीर्थं पुरातने पूर्वस्मिन्काले दिवौकोभिः दिवमेवौकोगृहं येषान्ते: " द्योदिवौ द्वे स्त्रियामित्यमरः " ओकस्सद्मनिचाथपेचे-त्यमरः। गोप्यं कृतं गोपितमित्यर्थः। ततश्चारभ्य विष्णोः प्रसादतो विनार्थाद्भगवत्कृपाविरहेण केपिनहि जानन्ति ॥ ४० ॥

इस तीर्थ को पूर्व समय में देवताओं ने गुप्त कर रक्खा था तब से विना विष्णुभगवान् की कृपा के कोई नहीं जानता है ॥ ४० ॥

अस्मिन्स्थाने कृतं पुण्यं परार्द्धगुणितंभवेत् ॥
विना पापं हि विप्रेन्द्र! त्वयि गुह्यंमयोदितम् ॥ ४१ ॥

हे विप्रेन्द्र! अस्मिन् स्थाने तीर्थे कृतं पुण्यं विना पापं पापराहित्ये परार्द्धगुणितमसंख्यमितिभावः भवेत्। त्वयि मयेदं गुह्यं गुप्तमुदितम् ॥ ४१ ॥

हे विप्रवर! इस स्थान में जो पुण्य किया जाता है वह निष्पाप परार्द्ध गुणित होता है अर्थात् असंख्य होता है यह बहुत गुप्त वस्तु है जिसको मैं तुमसे कहता हूं ॥

तथापि नहि कर्त्तव्यं जानता पापकंक्वचित् ॥
श्रद्धया पापकरणं नहि वेदानुशासनम् ॥ ४२ ॥

(स्पष्टार्थः)

तथापि जान कर कभी पाप नहीं करना चाहिये क्योंकि श्रद्धा से पाप करना वेदाज्ञा से विरुद्ध है ॥ ४२ ॥

अस्मिन्तीर्थे कृतं पापमत्रलीनं न संशयः
जले जातं बुद्बुदकं जले लीनं यथा भवेत् ॥ ४३ ॥

(स्पष्टार्थः)

जैसे जल से निकला हुआ बुद्बुदक (फेन) जल में ही लय होजाता है उसी प्रकार इस तीर्थ में किया हुआ पाप इसी तीर्थ में लय होजाता है इसमें संदेह नहीं ॥ ४३ ॥

एष तीर्थस्य महिमा त्ववाग्गोचर उच्यते ॥
तस्मात्सेव्यं सदा सद्भिर्नरैः पुण्यमनन्तकम् ॥ ४४ ॥

(स्पष्टार्थः)

इस तीर्थ की महिमा वचनातीत है अर्थात् अकथनीय है तथापि इतना कहूंगा कि इसके सेवन का अनन्त पुण्य है इसलिए सद्विचारवालों को सदा सेवन करना चाहिए ॥ ४४ ॥

सर्वकाले पुण्यमिदं चातुर्मास्ये विशेषतः ॥
तत्रापि कार्तिकमासि तत्रप्यन्त्येषुपञ्चसु ॥ ४५ ॥
दिनेषु सुमहापुण्यं कार्तिक्यां यत्पुनर्ब्रुवे ॥

(अयमपिस्पष्टार्थः सार्द्धश्लोकः)

ऐसे तो सदाही इस तीर्थ के सेवन का पुण्य है परन्तु चौमासे में सेवन करने का विशेष माहात्म्य है उनमें से भी कार्तिकमास में सेवन का फल अधिक होता है कार्तिक में भी अन्त्य के पांच दिनों (भीष्मपंचक) में बहुत ही अधिक पुण्य होता है ॥ ४५ ॥ एवं कार्तिकी अर्थात् कार्तिक की पूर्णिमा को जो फल होता है उसे पुनः कहता हूं ॥

कार्तिक्यां पौर्णमास्यां यः स्नाति श्रीकपिलालये ॥ ४६ ॥
तस्य पुण्यस्य माहात्म्यं नालं वक्तुं शिवः स्वयम् ॥

(स्पष्टम्)

कार्तिक की पूर्णिमा के दिन श्री कपिलालयधाम में जो स्नान करता है उस पवित्र पुरुष के माहात्म्य को साक्षात् शिव भी नहीं कह सकते और किसको कहूं ॥

किम्प्रोक्तेन महादेव ! पुनरुक्ततया भृशम् ॥ ४७ ॥
कापिलस्नानमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

(स्पष्टम्)

हे महादेव ! बारबार कही हुई बात को ही दुहराने से कुछ लाभ नहीं, मेरा कथन यही है कि कपिलालय में स्नान मात्र से ही मनुष्य सब पापों से मुक्त होजाता है ॥ ४७ ॥

इदं मया ते किंयदेव वर्णितं तीर्थस्य माहात्म्यमनुत्तमं मुने ॥ शेषोऽपिनिश्शेषतयास्य वर्णने विशेषशक्तिर्नहिजातुसंभवेत् ॥ ४७ ॥

हे मुने ! इदमनुत्तमं तीर्थस्य माहात्म्यं कियदेव किंचिदेव ते तुभ्यं मया वर्णितम् अन्यथा शेषोपि जातु कदाचित् अस्य तीर्थमाहात्म्यस्य निश्शेषतया वर्णने विशेषशक्तिर्नहिसंभवेत् यदि शेषोप्यसमर्थस्तदेतरस्यका कथेति ॥ ४८ ॥

हे मुने ! इस सर्वोत्तम तीर्थ माहात्म्य को तुमसे मैंने कुछ ही वर्णन किया है क्योंकि शेषजी की भी अधिक शक्ति नहीं कि कभी इसको पूर्ण रीति से वर्णन कर सकें तो औरों की क्या कथा है ॥ ४८ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे स्कन्दागस्त्यसम्वादे कपिलायतनमाहात्म्ये तीर्थवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः।

चतुर्थाध्यायकथारंभः।



(सूत उवाच)

इत्युक्त्वा तीर्थमाहात्म्यं स्कन्दः कुंभोद्भवं पुनः ॥
प्रत्युवाच कथाश्चित्रास्तीर्थमाहात्म्यसूचिकाः ॥ १ ॥

सूतश्शौनकादीन् श्रोतॄन् वदति-यत् स्कन्दः इतितीर्थ माहात्म्यमुक्त्वा पुनस्तीर्थमाहात्म्यसूचिकाश्चित्राः कथाः पुनः कुंभोद्भवमगस्त्यम्प्रत्युवाच ॥ १ ॥

सूत ऋषि अपने श्रोता शौनकादि ऋषियों से बोले कि भगवान् स्कन्द ने इस प्रकार तीर्थ माहात्म्य को कह कर पुनः इस तीर्थ की माहात्म्यसूचक विचित्र कथाओं को अगस्त्य ऋषि से कहा ॥ १ ॥

पुनर्मनः प्रत्ययार्थमितिहासानिमान्मुने ॥
शृणु त्वं सावधानः सन् श्रद्दधानोविधानतः ॥ २ ॥

हे मुने ! पुनर्मनः प्रत्ययार्थं मनसः प्रतीतिलाभाय श्रद्दधानः सावधानः सन्निमानितिहासान्विधानतस्त्वं शृणु ॥ २ ॥

हे मुनि ! पुनः अपने मन की प्रतीति वास्ते श्रद्धायुक्त और सावधान होकर इन इतिहासों को जिनको मैं आगे कहूंगा विधिपूर्वक तुम सुनो ॥ २ ॥

पुराकल्पे महाभाग तपस्विवरसद्मसु ॥
षट्कन्याः किलसंजाता रूपमाधुर्य्यसंयुता ॥ ३ ॥

हे महाभाग ! पुराकल्पे अस्मात्कल्पात्पूर्वस्मिन्कल्पे तपस्विवरसद्मसु रूपमाधुर्य्यसंयुताः किल षट्कन्याः संजाताः ॥ ३ ॥

हे महाभाग ! प्राचीन समय में तपस्वियों के गृह में रूप और माधुर्य्य गुणों से युक्त ६ कन्याएं उत्पन्न हुईं ॥ ३ ॥

सर्वास्समानवयसः परस्परहितेरताः ॥
चन्द्राननास्सुकेशान्ताः पद्मोत्पलसुगन्धयः ॥ ४ ॥

(स्पष्टार्थः)

वे ६ कन्यायें समान वयस् की थीं परस्पर प्रेमभाव से रहती थीं उनके पूर्ण चन्द्रमा के समान सुन्दर और उज्ज्वल मुख थे सुन्दर केश थे और शरीर की स्वाभाविक सुगन्ध कमल के पुष्प के सदृश थी ॥ ४ ॥

सर्वास्ता मृगशावाक्ष्यः कोमलाङ्ग्यः पिकस्वराः ॥
कलाकलापकुशलाः प्रवालमृदुलाङ्घ्रयः ॥ ५ ॥

(स्पष्टार्थः)

उन कन्याओं के नेत्र बालमृगों के नेत्र के सदृश थे, अङ्ग कोमल और स्वर कोकिल के सदृश थे एवं अनेक कलाओं में कुशल थीं, उनके पद प्रवाल के सदृश मृदुल मनोहर थे ॥ ५ ॥

यासां रूपं समीक्ष्याशु मुनीविभ्रममाव्रजेत् ॥

जिनके रूप को देखकर मुनि भी विभ्रम को प्राप्त होजाते थे ।

एवंविधाः कुमार्यस्ताः मिथः सख्यमुपागताः ॥ ६ ॥
मिथः क्रीडन्ति भाषन्ते मिथोयान्तिगृहान्मिथः ॥
मिथोमिथः परस्नेहा भुञ्जते भोजयन्तिच ॥ ७ ॥
मिथोदेवालयेयान्ति मिथः स्नान्ति नदीजले ॥
मिथोवने विहारं कुर्वन्तिपरतत्पराः ॥ ८ ॥

मिथोगायन्ति गीतानि सन्निधौशेरतेमिथः ॥
एवं तासां प्रीतिरभूत् पूर्वजन्मप्रभावतः ॥ ६ ॥

(स्पष्टार्थाः इमे श्लोकाः)

इस प्रकार रूप माधुर्यादि गुणों से युक्त वे कुमारियें परस्पर सखित्व भाव को प्राप्त हुईं। साथ साथ खेलतीं, साथ साथ बात करतीं, एक साथ घर को जातीं, परस्पर प्रेम के साथ एक दूसरी को खिलाती और खाती थीं एवं साथ साथ देवदर्शन को जाती थीं, साथ साथ नदी के जल में स्नान करने जाती थीं, एक साथ मिलकर सुन्दर २ मधुर गीतों को गाती थीं और एक साथ सोती थीं। इस प्रकार का परस्पर प्रेम उनको पूर्वजन्म के प्रभाव से हुआ था ॥ ६, ७, ८, ९॥

सुरम्यं रममाणास्तास्तपस्विवरकन्यकाः ॥
मुग्धभावं परित्यज्य किंचिद्विदग्ध्यमागताः ॥ १० ॥

तास्तपस्विवरकन्यका एवं सुरम्यं रममाणा मुग्धभावं परित्यज्य किंचिद्विदग्ध्यं विदग्धभावमागताः प्राप्ताः ॥ १० ॥

वे तपस्वियों की कन्याएं इस प्रकार सुरम्य बाल क्रीड़ा करतीं हुईं अपने मुग्ध भाव अर्थात् कैशोर अवस्था को त्याग कर विदग्धावस्था अर्थात् तरुणावस्था को प्राप्त हुईं ॥ १० ॥

तासां नामानि वक्ष्यामि शृणुमे द्विजसत्तम ॥
मन्दा मन्दाकिनी मोदा नर्मदा शुभदा विदा ॥ ११ ॥

(स्पष्टम्)

हे द्विजसत्तम ! उन कन्याओं के क्या नाम थे सो बताता हूं सुनो एक का नाम मन्दा, दूसरी का नाम मन्दाकिनी, तीसरी का नाम मोदा एवं चौथी पांचवी के नाम क्रम से नर्मदा शुभदा और छटवीं का नाम विदा था ॥ ११ ॥

तासाम्बुद्धिरभूद्ब्रह्मन् संस्कारात्पूर्वजन्मनः ॥
इन्द्रियाणां हिदमने ब्रह्मचर्यस्य पालने ॥ १२ ॥
अष्टाङ्गयोगेविमले प्राणायामादिसाधने ॥
वैराग्यभावविभवे रागद्वेषविवर्जिते ॥ १३ ॥

(स्पष्टार्थाः)

हे ब्रह्मन् पूर्वजन्म के सद्वासना से इन्द्रियों के दमन करने में, ब्रह्मचर्य के पालन करने में, विमल अष्टाङ्गयोग के साधन और प्राणायामादि योगक्रिया के साधन में एवं रागद्वेष से रहित शुद्ध वैराग्य भाव में उन कन्याओं की प्रवृत्ति हुई ॥ १२, १३ ॥

एवं धृतास्थिरं कालं गमयामासुरंजसा ॥
सुशीलाश्शुद्धमनसः पूर्वकर्मविपाकतः ॥ १४ ॥

पूर्वकर्मविपाकतस्तास्सुशीलाश्शुद्धमनसो मुनिकन्या एवं पूर्वोक्तिव्रतेन धृत्वा अंजसा चिरंकालं गमयामासुः ॥ १४ ॥

उन सुशील और शुद्ध चरित्रवाली मुनिकन्याओं ने इसप्रकार मनों के आचरण में बहुत दिन व्यतीत कर दिये ॥ १४ ॥

कस्मिंश्चित्कालपर्याये समाजोऽभून्महात्मनाम् ॥
प्रयागे महतिक्षेत्रे माघे मकरगेरवौ ॥ १५ ॥

कस्मिंश्चित्कालपर्याये महतिक्षेत्रे प्रयागे मकरगेरवौ माघेमासि महात्मनांसमाजोऽभूत् ॥ १५ ॥

किसी समय माघ मास में जब मकर के सूर्य हुए तो तीर्थराज प्रयाग में देश देशान्तरों से आये हुए ऋषि मुनि महर्षि और तपस्वी इत्यादि महात्माओं का समाज एकत्र हुआ ॥ १५ ॥

तत्र त्रैलोक्यसंस्थानास्सर्वे लोकास्समागताः ॥
देवा देवर्षयो देव्यो ब्रह्मन् ! ब्रह्मर्षयोऽमला ॥ १६ ॥
राजानश्च तथा मर्त्याः सर्वे सत्पुण्यमानसाः ॥
तत्रागत्य यथा काले सस्नुः प्रीताः सितासिते ॥ १७ ॥

(स्पष्टार्थो)

हे ब्रह्मन् ! त्रैलोक्य में रहनेवाले सभी देवता, देवर्षि, देवियां और ब्रह्मर्षि एवं राजालोग तथा साधारण मनुष्य सत्य और पवित्र मन से उस समाज में एकत्रित होकर सम्पूर्ण माघ मासभर उचित समय से प्रसन्नतापूर्वक स्नान करते रहे ॥ १६, १७ ॥

तत्रताः पूर्वमुदिता मुने ! षड्मुनिकन्यकाः ॥
स्नानार्थं समुपायाता स्तीर्थराजे जितेन्द्रियाः ॥ १८ ॥

हे मुने ! तत्र तस्मिंस्तीर्थराजे प्रयागे पूर्वमुदिताः पूर्वोक्ताः जितेन्द्रियास्ता षड्मुनिकन्यकाः स्नानार्थं समुपायाता आगतवत्यः ॥ १८ ॥

हे मुनि ! अपनी इन्द्रियों को वश में रखनेवाली ६ मुनिकन्याएं जिनकी चर्चा पहले कर आया हूं वे भी उस तीर्थराज प्रयाग में स्नान करने के लिए आईं ॥ १८ ॥

आगत्य विधिना सस्नुर्माघे मासि सितासिते ॥
सदा समाजम्परयन्त्यश्चेह मीलितलोचनाः ॥ १९ ॥

आगत्य तत्र सितासिते शुक्ले पक्षे कृष्णे पक्षेच समस्ते माघे मासि विधिना स्नाता एवं विषयादिभोगालिप्सारहिताः परब्रह्माणि मग्नं लीनन्त्वान्मीलितलोचनास्सदा समाजं परयन्त्यश्चेह ॥ १९ ॥

वहां आकर समस्त माघमासभर विधिपूर्वक स्नान करती रहीं और सतत परब्रह्म की चिन्तना करती हुईं तथा समाज को देखती हुईं भ्रमण करती रहती थीं ॥ १९ ॥

दान जाप्य व्रत स्नान ध्यान योगादि तत्पराः ॥
मासमेकंजना स्सर्व्वे तत्र स्थितिमरोचयन् ॥ २० ॥

(स्पष्टम्)

उस समाज में आये हुए सभी लोगों ने दान जप व्रत स्नान और ध्यान आदि कार्य्यों में तत्पर होकर एक मास पर्य्यन्त वहां रहने की इच्छा प्रकट की ॥ २० ॥

कदाचिद्वरकन्यास्तास्समाजे महदन्तिके ॥
विष्णुगाथाः प्रगायन्तं प्रीत्यासुस्वरमुच्चकैः ॥ २१ ॥
आलिङ्ग्यमहतीम्वीणां सप्तस्वरविभूषिताम् ॥
वादयन्तम्मुदायुक्तं स्वरम्ब्रह्मसुखालयम् ॥ २२ ॥
धुन्वानं निजमुर्द्धानं किशोरवयसान्वितम् ॥
ददृशुर्नारदं विप्र ! गानविद्या-विशारदम् ॥ २३ ॥

हे विप्र ! महदन्ति के तस्मिन्समाजे विचरन्त्यस्ता वरकन्याः कदाचित् कस्मिंश्चित्समये प्रीत्या उच्चकैः उच्चस्वरेण सुस्वरं यथा भवति तथा विष्णुगाथाः भगवतोविष्णोर्गुणानुवादान् प्रगायन्तं सप्तस्वराविभूषिताम् सप्ताभिर्निषादर्षभगान्धार खड्ज मध्यम, धैवत, पञ्चमेतिस्वरै र्विभूषिताम् स्वकीयाम्महतीम्वीणामालिङ्ग्याङ्केनिधाय ब्रह्मसुखालयम्ब्रह्मानन्दप्रापिकरं सुस्वरं सुलयम्वादयन्तं ताला-दिपर्य्याये गानस्य काल क्रियामाने समागते निज मूर्धानं धुन्वानं गानविद्या विशारदं किशोरवयसान्वितम्मुदायुक्तं हर्षोल्लासितविग्रहं नारदं ददृशुः ॥ २१, २२, २३ ॥

उस महासमाज में विचरती हुई उन कन्याओं ने किसी ए
समय में प्रेम भरे उच्चस्वर से विष्णु भगवान् के गुणानुवादों को गाते
और निषाद, ऋषभ, गान्धार, षड्ज, मध्यम एवं धैवत एवं
पंचमपर्यन्त स्वरों के भेदों से विभूषित अपनी विशाल वीणा
हाथ में ले ब्रह्मानन्द के समान आनन्ददायक लय को बजाते तथा ता
के समय अपने सिर को कंपाते हुए, किशोरवयस, प्रसन्न च
नारद मुनि को देखा ॥ २१, २२, २३ ॥

दृष्ट्वा च मुमुहुस्सर्वाः कामबाणवशंगताः ॥
योग मार्गम्विनिन्दन्त्यः स्तुवन्त्यो भोगभूमिकाम् ॥२४

एवम्भूतं मुनिं नारदं दृष्ट्वा चकाराज्जितेन्द्रिया अपिताः सर्वा कन्यकाः कामबाणवशंगता योगमार्गम्विनिन्दन्त्योभोग भूमिकां स्तुवन्त्यः मुमुहुः मोहम्प्राप्ताः ॥ २४ ॥

ऐसे सुन्दर स्वरूप नारदजी को देखकर काम के वशीभूत होकर वे मुनिकन्याएं मोहित होगईं और योग-मार्ग की निन्दा तथा विषय भोग की स्तुति करने लगीं ॥ २४ ॥

एवं योगम्परित्यज्य भ्रष्टास्ता मुनिकन्यकाः ॥
विष्णु माया हृतात्मानः पतिता योग भूमित : ॥२५॥
महाकामग्रहग्रस्ता विह्वला ग्रहली कृताः ॥
काम वासनाया विद्धा मृताः स्वायुष्य संक्षये ॥ २६ ॥

(स्पष्टार्थ)

इस प्रकार वे मुनिकन्याएं योगमार्ग से भ्रष्ट हो गईं विष्णु भगवान की माया ने उनकी आत्मा को हरण कर योग भूमि से गिरा दिया और महाकामरूपी ग्रह से ग्रस्त होकर वे विह्वल और उन्मत्त होगईं एवं कामवासनासे विद्ध होकर सबकीसब कन्याएं मरगईं ॥२५,२६

योगभ्रष्टास्ततो जाता महतांश्रीमतांकुले ॥
विप्राणां कुलजातानान्ताः याः पूर्वं सख्यमाश्रिताः ॥२

योगभ्रष्टाः कन्यकाः यतः पूर्वं पूर्वस्मिन्भवे सख्य
श्रेताः पारस्परिक प्रेम भावंगताआसन् अतस्ततोऽर्थान्मुनिप्
मृत्युम्प्राप्य कुलजानाम्महतांश्रीमताम्विप्राणां कुले जाताः स
ुनर्जन्मसम्प्राप्ताः ॥ उक्तंचापि " शुचीनां श्रीमतां गेहे
ेद्वज्जनस्यथा । अथवा श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टो हि जायते " ॥२

वे कन्याएं जो पूर्व जन्म में परस्पर प्रेम भाव से रहा करती
योग से भ्रष्ट होकर मर जाने पर उन्हों ने महाकुलीन एवं श्री
ब्राह्मणों के कुल में एक साथ ही पुनर्जन्म ग्रहण किया ॥ २७ ॥

जामदग्न्यप्रदत्ता, या, धरा, विप्रेपुसंस्थिता ॥
तद्धरास्वामिनांगेहे जातास्तामुनिकन्यकाः ॥ २८ ॥

जमदग्नेः अपत्यं जामदग्न्यस्तेन प्रदत्ता या धरा वि
संस्थिता। जामदग्न्यः परशुरामः एक विंशतिवारं निःक्षत्रां
कृत्वा सर्वांपृथिवींब्राह्मणेभ्योंददाविति कथा पुराणप्रसिद्धा। त
स्वामिनामर्थाजामदग्न्यप्रदत्ताधरानायकानांगेहेता मुनिक
जाता जन्म प्राप्ताः ॥ २८ ॥

जमदग्नि ऋषि के पुत्र परशुराम ने इक्कीसवार क्षत्रिय रा
को मारकर पृथ्वी निःक्षत्र करदी। पृथ्वी पर कहीं क्षत्रियों का
निशान तक नहीं रहा तो ब्राह्मणों को पृथ्वी दान करके
यह कथा पुराणों में विस्तारपूर्वक है। उसी जामदग्न्य (परशु
की दी हुई पृथ्वी के स्वामी ये ब्राह्मण थे जिनके गृह में
कन्याओं ने पुनर्जन्म ग्रहण किया ॥ २८ ॥

यत्र वै कपिलक्षेत्रं महापुण्यं महीतले ॥
एक योजन विस्तारं मध्यतः पादयोजनम् २६ ॥

जामदग्न्यः सर्वां पृथ्वीमेकस्मिन्नैकदेशनिवासिब्राह्मणेभ्य एव नादात् किन्तु यस्मिन्यस्मिन्देशेयंयंराजानमवधीत् तस्य भुक्तदेशवासिब्राह्मणेभ्यः प्रादात्तथैवास्मिन्मरुकान्तारवासिब्राह्मणेभ्यःम्भूमिमेतद्देशनिवासिभ्योददौ यत्र ते ब्राह्मणा निवासमासुस्तत्रैकयोजनविस्तारं मध्यतः पाद योजन मानं महा पुण्यं पवित्रं कापिलं कपिलसम्बन्धिक्षेत्रं महीतले अस्ति॥ २६ ॥

परशुराम ने जीती हुई समग्र पृथ्वी एक ही किसी ब्राह्मण को अथवा एकही किसी देश के निवासी ब्राह्मणों को नहीं दी, क्योंकि ऐसा किया होता तो पुराणों में अवश्य इसकी कोई कथा मिलती। इसलिये यह अनुमान होता है कि जिस देश अथवा राजधानी को जीता वहां की पृथ्वी उसी देश के निवासी ब्राह्मणों को दान कर दी, इसी प्रकार इस मरुकान्तार प्रदेश को जीतकर यहां की भूमि इसी देश के अर्थात् कपिलक्षेत्र के निवासी ब्राह्मणों को ही दान कर दी जो कपिलक्षेत्र पृथ्वी पर महापवित्र परिगणित किया गया है जिसकी सीमा चारोंतरफ एक योजन की लम्बाई चौड़ाई पर है और मध्य में चतुर्थांश योजन अर्थात कोस भर के दीर्घ विस्तार में वह धाम है ॥ २६ ॥

मध्यतः क्रोशमात्रंतज्ज्योति रूपं सनातनम् ॥
मृतास्तत्रविमुच्यन्ते सद्यः प्रक्षीणयन्घनाः ॥ ३० ॥

(१) पाठकगण ! हिन्दूधर्म मर्यादानुसार अन्य तीर्थस्थानों की भांति इस क्षेत्र के विषय में उपरोक्त २६ व ३० के श्लोक में इस पुण्यक्षेत्र का महत्व भी स्पष्टरूपेण प्रदर्शित हो रहा है और इस क्षेत्र का केन्द्रस्थान, मन्दिर व जलाशय की भूमि स्थान ही माना गया है उससे चारों ओर १ कोस की सीमा पर्यन्तस्थान एक भांति ही [illegible] स्थान है। इस सीमा के अन्दर पूर्णमर्यादाजन स्वधर्म करके यहां

मध्यतः क्रोशमात्रमिति स्पष्टम् ॥ ३० ॥

योजन के चतुर्थांश परिमित मध्य में कपिलमुनि का धाम है और योजन ४ कोस को कहते हैं इसका चतुर्थांश एक कोस हुआ। अतः इस श्लोक में उसी पूर्वोक्त मध्यवर्ती धाम का वर्णन करते हैं कि मध्य में कोसमात्र का जो क्षेत्र है वह कपिलधाम है, ज्योतिरूप है, और सनातन है। उस धाम में देह त्याग करनेवाले उसी समय अपने संसारी कर्मबन्धनों को त्याग कर मुक्त हो जाते हैं ॥ ३० ॥

तद्धामसीम सामीप्ये विप्रक्षेत्राणि सन्ति वै ॥
तेषु क्षेत्रेषु ते विप्राः स्वदासैः शूद्रजैस्सह ॥ ३१ ॥
वापयन्ति सदाधान्यं स्वकुटुम्बस्य पुष्टये ॥
प्रावृट् काले महामेघजलमालासमाकुले ॥ ३२ ॥

(स्पष्टार्थ)

उस धाम की सीमा के समीपही में उन ब्राह्मणों के क्षेत्र हैं वे ब्राह्मण जब बरसात के दिनों में पूरी वर्षा होने लगती है और आकाश सघन एवं सजल मेघों से आच्छादित हो जाता है तो अपने कुटुम्बों

सांसारिक अपने पापों से मुक्त होकर पुण्य के भागी होते हैं यहांतक कि जो अपने शुद्ध अन्तःकरण से यहां आकर आने की इच्छा से करते हैं वे भी मुक्त को प्राप्त होजाते हैं और इस कोस भरकी पवित्र भूमि के चारों ओर ४ कोस की सीमा तक इसी पवित्र क्षेत्र ही की सीमा गिनी है। जैसे इस देश में "चौरस" शब्द के नाम से कहते हैं [illegible] है इसलिये इस ४ कोस की भूमि को शास्त्र में परमपवित्र एवं मोक्षदायिनी भूमि मानी है इसमें सब प्रकार की पशुहिंसा या जीवहिंसा वर्जित है और [illegible] है। इस समय भी देखते हैं जो बड़े पवित्र लोगों के [illegible] इसी चौरस [illegible] है। भूमि मोक्षदायी है यह सब पवित्र भूमि है। इसकी मानी है यहांतक [illegible] कि किसी तीर्थ के चौरस में केवल है। [illegible] [illegible] हो [illegible] है [illegible] से [illegible] होने के [illegible] [illegible] के [illegible] से भी [illegible] था।

[illegible] के लिए [illegible] के साथ [illegible] करते हैं ॥ ३१, ३२ ॥

यदा क्षेत्रेषु संजाता धान्यानां बहुसम्पदः ॥
कार्तिके विमले मासि सर्वलोक मनोहरे ॥ ३३ ॥
तदा ब्राह्मण कन्यकाः क्षेत्र रक्षण तत्पराः ॥
यौवनारंभिसमयारूढाः सौन्दर्य्यनिधयः ॥ ३४ ॥
स्वान् स्वान् पितृननुज्ञाप्य क्रीडनार्थं स कौतुकाः ॥
क्षेत्ररक्षामिषीकृत्य प्रत्यहं जग्मुरादृताः ॥ ३५ ॥

सर्व लोक मनोहरे विमले कार्तिके मासि यदा क्षेत्रेषु धान्यानां बहुसम्पदस्संजातास्तदा: क्षेत्ररक्षणतत्परायसमयमारूढा यौवनारंभिकावस्थाप्राप्ताःसौन्दर्यनिधयःपरमरूपवत्यो ब्राह्मणकन्याः क्षेत्ररक्षामिषीकृत्य क्षेत्ररक्षाव्याजेन स्वान् स्वान् पितृननुज्ञाप्य तैरादृताः स्नेहेनानुग्रहीताः सकौतुकाः क्रीडनार्थं प्रत्यहं जग्मुः ॥ ३३, ३४, ३५ ॥

सर्वजन मनोहर विमल कार्तिक मास में जब खेतों में प्रचुर धान्य की सम्पत्ति हो जाती थी तो खेतों की रखवाली के लिए परम उत्सुक हो कर यौवन की प्रारंभिक अवस्था में प्राप्त रूप सौन्दर्य्य की खानि वे ब्राह्मण कन्याएं खेत की रखवाली का बहाना करके अपने अपने पिताओं से आज्ञा लेकर और उनसे आदृत होकर कौतुक के साथ प्रतिदिन खेलने के लिए जाती थीं ॥ ३३, ३४, ३५ ॥

चटकादि विहंगेभ्यो मृगादिभ्यो दिने दिने ॥
धान्यरक्षां प्रकुर्वन्त्यः क्रीडन्त्यः कौतुकान्विताः ॥ ३६ ॥

दिने दिने चटकादिविहंगेभ्योमृगादिपशुभ्यो धान्यरक्षां प्रकुर्वन्त्यः कौतुकान्विताः क्रीडन्त्यः खेलान्तिस्म ॥ ३६ ॥

वे कन्याएं प्रतिदिन पशु-पक्षियों से धान्य की रक्षा करती हुई बड़े कुतूहल के साथ खेलती थीं ॥ ३६ ॥

सायम्पुन र्गृहानान्तु यदेच्छाजायतेहृदि ॥
स्वक्षेत्रेभ्यः परावर्त्य समायुक्ताः श्रमान्विताः ॥ ३७ ॥
समागत्य स्ववासांसि तीरेन्यस्यसुमध्यमाः ॥
प्रत्यहं स्नान्ति विप्रेन्द्र ! कापिलेये सरोवरे ॥ ३८ ॥

हे विप्रेन्द्र ! पुनः सायं यदा हृदि गृहगमिच्छा जायते तदा समायुक्ताः सदैवगमनशीला श्रमान्विताः समस्तदिवसक्रीडनात् स्थगितास्सुमध्यमास्ताः स्वक्षेत्रेभ्यः परावर्त्य कापिलेये सरोवरे समागत्य तीरे स्ववासांसिन्यस्य प्रत्यहं स्नान्ति स्नानं कुर्वन्तिस्म ॥ ३७, ३८ ॥

हे विप्रेन्द्र ! सायंकाल में जब घर जाने की इच्छा होती थी तो दिन भर की क्षेत्ररक्षा और खेल से थक कर वे कन्याएं अपने २ क्षेत्रों से परावर्तित हो (लौट) कर कपिल सरोवर पर आती और अपने वस्त्रों को सरोवर के तीर पर रख कर प्रतिदिन स्नान करती थीं ॥ ३७, ३८ ॥

क्षुधाविष्टा भक्षयित्वा क्षेत्रानीतं फलादिकम् ॥
तत्र प्रक्षिप्यचोच्छिष्टं गृहायोन्ति स्वकान् स्वकान् ॥३९॥

समस्त दिन परिश्रमात्क्षुधाविष्टास्ताः कन्याः क्षेत्रानीतं फलादिकं भक्षयित्वा तत्रोच्छिष्टंच प्रक्षिप्य स्वकान् २ गृहान्यान्तिस्म ॥ ३९ ॥

दिन भर के परिश्रम से भूखी और थकी हुई कन्याएं स्नान करने के अनन्तर खेतों से लाये हुए फल मूलादि का भक्षण कर उच्छिष्ट को वहां ही छोड़ कर अपने २ घर को चली जाती थीं ॥ ३९ ॥

एवं तासां कुर्वतीनां व्यतीता द्वित्रहायनाः ॥
तद्वारिस्नानपुण्येन परां शुद्धिमुपागताः ॥ ४० ॥

(स्पष्टम्)

इस प्रकार प्रतिदिन स्नान करते हुए कन्याओं को दो तीन व्यतीत हो गए उस सरोवर के जल में स्नान करने के पुण्य से परमशुद्धि को प्राप्त हो गईं ॥ ४० ॥

ततस्तासां स्मृतौ जातं पूर्वे जन्म विचेष्टितम् ॥
स्वसखित्वंपरंप्रेम योगभ्रंशस्तथैवच ॥ ४१ ॥

ततोऽर्थात्कापिलेयस्नानपुण्याच्छुद्धिप्राप्तानन्तरं पूर्वे जन्म विचेष्टितम् स्वसखित्वं परंप्रेम तथैव योग भ्रंशत्वं चकारान्मुनीन गृहेजन्म, योगादिसाधनं, प्रयागगमनं, नारदेक्षणमित्यादिच सर्वतासां स्मृतौजातम् ॥ ४१ ॥

तदनन्तर अर्थात् कापिलसरोवर में नित्य स्नान करने से जो शुद्धि प्राप्त हुई उसके अनन्तर उन कन्याओं को अपने पूर्वजन्म की सब कथा (अर्थात् मुनियों के गृह में जन्म लेकर अष्टांग योग की साधना, परस्पर की मैत्री तथा घनिष्ट प्रेम, प्रयागराज की यात्रा, वहां नारदजी का सौन्दर्य देख मोहित होना, विषय भोग की उत्कटेच्छा से योगमार्ग की निन्दा करते शरीर को त्याग करना और पुनः पवित्र और कुलीन ब्राह्मणों के घर में जन्म लेना) इत्यादि एक एक करके ज्ञात होगई ॥ ४१ ॥

एवं स्मृतौ प्रवृत्तायां पूर्वस्यां तास्तपोधन ! ॥
दैवेन दुर्विनक्ष्येण सद्यः पंचत्वमागताः ॥ ४२ ॥

हे तपोधन ! एवं पूर्वोक्त क्रमेण पूर्वस्यां स्मृतौ प्रवृत्तायां पूर्वजन्म स्मृतौ संजातायां दुर्विनक्ष्येणाविचिन्त्येन दैवेन भाग्येन हे तास्ता सद्य स्तत्क्षणएवताः पञ्चत्वमागता मर्यान्मृतावभूवुः ॥ ४२ ॥

हे तपोधन ! जब इस प्रकार पूर्व जन्म की स्मृति प्राप्त हो गई तो अविचिन्त्य दैवसंयोग से तत्काल ही सब कन्याओं ने एक साथ अपने शरीर का त्याग करदिया ॥ ४२ ॥

तत्तीर्थस्य प्रभावेण योग भ्रष्टा दिवंगताः ॥
पुनरेव मुनीनान्ताः कुलेजाता महात्मनाम् ॥ ४३ ॥

पूर्व भवे योगभ्रष्टा अपितास्तस्य तीर्थस्य कपिलायतनस्य प्रभावेण दिवं स्वर्गगताः पुनः कियत्काले स्वर्गे सुखं भुक्त्वा महात्मनां मुनीनां कुले एव जाताः ॥ ४३ ॥

वे ब्राह्मण कन्याएं पूर्व जन्म में योग से भ्रष्ट हो गई थीं अब उत्तरोत्तर अधोगति को ही प्राप्त होतीं, परन्तु उस कपिलतीर्थ के प्रभाव से स्वर्ग को गईं और वहां कुछ दिनों तक स्वर्ग सुख का भोग करके पुनः महात्मा मुनियों के कुल में उन्हों ने जन्म ग्रहण किया ॥ ४३ ॥

महा मुनिभिरूढाश्च पुनर्देवर्षिसन्निभैः ॥
कियत्कालं परंभोगं भुंजानाः सहभर्तृभिः ॥ ४४ ॥
स्थितादिव्येषु लोकेषु मोदमानाः प्रभान्विताः ॥
तद्धामनि तदुच्छिष्ट प्रक्षेपोद्भूतदोषतः ॥ ४५ ॥
किञ्चित्कारणमुद्दिश्य पुनस्त्यक्ताः स्वभर्तृभिः ॥
पडेव कृत्तिका जाता भूय संभूयभूरिशः ॥ ४६ ॥

पुनः अर्थान्मुनिगृहे जन्म ग्रहणानन्तरं देवर्षिसन्निभैर्महा मुनिभिरूढा विवाहिताश्चताः भर्तृभिस्सह कियत्कालं परं भोगं भुंजानाः मोदमानाः प्रभान्विताः दिव्येषु लोकेषु स्थिता. निवासमापुः। अनन्तरं तद्धामनि तदुच्छिष्ट प्रक्षेप दोषतः अर्थात् पूर्वस्मिन्भवे ब्राह्मण गृहे जन्म संप्राप्य वेश्मरक्षामिषीकृत्य क्रीडनार्थ

गत्वा तत्र फलादिकं संगृह्णाति स्म तेन [illegible] स्नात्वा फलादिकं भक्षयित्वा प्रत्यहं तदुच्छिष्टं तत्तीर्थे [illegible] पूर्वदोषादिदंभत्वे मुनीनां गृहे स्वभर्तृभिः किंचित्कालानन्तरं दोषादस्मुद्दिश्य त्यक्ताः । अनन्तरं ता एव षट्कन्याः पुनः संपूर्ण-धर्मोपार्जितगत्या तदनन्तरं देवलोकेऽप्याकाशे भूरितीर्थवासुकृतेनाऽ-कृत्तिका कृत्तिकानक्षत्र स्थानताराः संजाताः ॥४४,४५,४६॥

पुनः उन मुनि कन्याओं का विवाह देवर्षितुल्य मुनियों से हुआ और उन कन्याओं ने अपने २ स्वामियों के साथ सुख दिनों तक उत्तम भोगविलास किया और पूर्ण प्रभा एवं हर्ष के साथ दिव्यलोक में जहां उन मुनियों के रहने का निवासस्थान था वहां निवास किया. तदनन्तर पूर्वजन्म में जो कपिलसरोवर के तीर पर फल मूल खाकर उच्छिष्ट प्रक्षेपण किया करती थी उसके दोष से इस योनि में किसी कारण स्वामियों ने उन को त्याग कर दिया। पति से त्यक्त होकर उन्हों ने पुनः अपने शरीर को त्यागकर दिया। तीर्थमें उच्छिष्ट त्याग करने का इतना ही फल उनको भोगना पड़ा कि पति से त्यक्त हुईं। अनन्तर कई जन्मों के सुकृत वश तथा कपिलाश्रम के शुद्धसरोवर में स्नान करने के कारण जो उनके असंख्य पुण्य संचित हो गये थे उन पुण्यों के प्रभाव से आकाश में तारा होकर छओं कन्याएं विकास करने लगीं जिनको कृत्तिका के तारे कहते हैं। ज्योतिषशास्त्र में छुरा के आकार में इन तारों की स्थिति बताई गई है ॥ ४४, ४५, ४६ ॥

आकल्पान्तं स्थिता ब्रह्मन्दिवि भान्ति महाप्रभाः ॥
महायोगि प्रभावेण महायोगिन्यएवताः ॥ ४७ ॥
तीर्थ स्नानज माहात्म्यं सूचयन्ति निरन्तरम् ॥

हे ब्रह्मन् महायोगिप्रभावेण महायोगिनः कपिलमुनेः प्रसादात् [illegible] महायोगिन्यो महाप्रभा महाचमत्कार विशिष्टा आकल्पान्तं

दिवि आकाशे स्थिता विभान्ति ॥ ४७ ॥ तथाच निरन्तरं तीर्थस्नानजमाहात्म्यं सूचयन्ति ॥

हे ब्रह्मन् ! महायोगी कपिलमुनि के प्रभाव से महायोगिनी वे कन्याएं महोज्ज्वल तारा रूप धारण कर कल्पान्त तक के लिए आकाश में प्रकाश कर रही हैं ॥ ४७ ॥ और निरन्तर तीर्थस्नान के महात्म्यों की सूचना दे रही हैं ॥

यासां कार्तिकमासस्य सारासार विवेकिनः ॥ ४८ ॥
नाम निर्वचनं चक्रुर्नरा नैरुक्त वेदिनः ॥
तासांस्तन्यं मयापीतं षड्मुखैर्घटजोत्तम ॥ ४९ ॥

यासां षएणां कन्यकानां कार्तिक मासस्य सारसार विवेकिनः कार्तिकमासमाहात्म्यवेत्तारोनैरुक्तवादिनोनिरुक्तशास्त्रज्ञा नरा एकैव कृत्तिकेति नाम निर्वचनं चक्रुस्तासाम्परस्परमतिप्रेमदर्शनादितिभावः। हे घटजोत्तमागस्त्य ! तासांस्तन्यं दुग्धंमया षड्भिर्मुखैः पीतम् ॥ ४८, ४९ ॥

☞ पृष्ठ ६४ के ४४, ४५, ४६ वें श्लोकों पर विशेष वक्तव्य

(१) वस्तुतः जब ये कन्याएं योग से च्युत होकर ब्राह्मणों के घर में उत्पन्न हुईं और नित्य वेणी से आकर सायंकाल के समय कपिल सरोवर में स्नान कर के अपने २ गृह को जाती थीं जिस स्नान के पुण्य से पूर्व जन्म की स्मृति हुई और तत्काल ही इन्होंने देहत्याग कर दिया और स्वर्गलोक को गयीं, वही समय इनकी मुक्ति का था परन्तु उस तीर्थ में उच्छिष्ट त्याग करना ही एक अपराध था जिससे पुनः एक बार मुनिकन्या होकर पतित्यागरूप दण्ड भोगना पड़ा और इसके अनन्तर जन्म-मरण से रहित हो आकाश में तारा रूप होकर आकल्पान्त वास करने लगीं। लिखा भी है कि "नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्प कोटिशतैरपि" अर्थात् शतशः कोटि कल्प व्यतीत होजाएं परन्तु कर्मों का नाश भोग करने ही से होता है। अथच "नह्यात्मनां कर्म फलोपभोगः कायाद्विना" अर्थात् कर्म का भोग भी शरीर धारण करने ही से होता है। इसीसे सिद्ध होता है कि जब कर्मों का नाश हो जाता है तो शरीर धारण करने की भी कोई आवश्यकता नहीं है और शरीर धारण न करना ही मुक्ति है।

हे अगस्त्य ! कार्तिक मास के वास्तव तत्त्वों के ज्ञाता और निरुक्त शास्त्र के मर्मवेदी विद्वानों ने उन कन्याओं के लगातार कई जन्मों के परस्पर प्रेम को देखकर छओं का एक ही नाम (कृत्तिका) रक्खा उन्हीं कृत्तिकाओं का दुग्ध मैं ने अपने ६ मुखों से पिया है॥ ४८, ४९॥

नोट—किसी कल्प की कथा है कि शंकरजी का विवाह दक्षप्रजापति की कन्या से हुआ था इसलिये शंकरजी सर्वदेव शिरोमणि होने पर भी दक्षप्रजापति के जामाता ही थे। एक समय ब्रह्मलोक में देव सभा हुई जिसमें सभी देवता पहले ही से आए हुए थे, दक्ष प्रजापति कुछ पीछे आए उनको सभा में उपस्थित देख सभी देवताओं ने उठकर अभिवादन और स्वागत किया परन्तु आदिदेव शंकरजी ने कुछ भी नहीं किया। अपने जामता की ऐसी धृष्टता देख दक्षप्रजापति बहुत क्रुद्ध हुए और उस सभा से चलेगए, तब से शंकरजी से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखते थे। कुछ काल के बाद दक्षप्रजापति ने एक यज्ञ किया जिसमें शंकरजी को निमंत्रित करके नहीं बुलाया परन्तु पिता के यज्ञ करने का समाचार सुनकर दक्षपुत्री बिना निमन्त्रण के ही पिता के घर जाने को उद्यत होगई और शंकरजी से आज्ञा मांगी शंकरजी अपने श्वसुर के क्रुद्ध होने की कुल कथा कहकर दक्षसुता को बहुत समझाया परन्तु दक्षपुत्री ने एक न माना और पिता के घर गई वहां जाकर यज्ञ में सब देवताओं का अंश देखा परन्तु शंकरजी का भाग कहीं नहीं देखा और सब किसी ने कुशलमंगल पूछा परन्तु दक्षप्रजापति ने अपनी कन्या को देखा तक नहीं, इसलिए पीहर में पति का और अपना अपमान देख ईर्षा के वश होकर योगाग्नि से भस्म होगई। यही दक्षसुता पुनः हिमाचल के घर जाकर उत्पन्न हुई और नारदजी उनकी हस्तरेखा देख " शंकरजी से विवाह होगा " ऐसा कहकर पार्वती को तपस्या करने का आदेश दिया था।

पाण्मातुर इतिख्यातो हृष्ट पुष्टश्च सर्वदा ॥
नैष्ठिको ब्रह्मचार्यस्मि तासां योग प्रभावतः ॥ ५० ॥
सेनानीः सर्वदेवानां सर्वासुरनिकन्दनः ॥

सर्वदा तासामेवस्तन्यपानेनाहं हृष्टः पुष्टः षाड्मातुर इतिख्यातश्च तथा तासां योग प्रभावतः सर्वदेवानां सेनानीः सर्वासुर निकन्दनो नैष्ठिको निष्ठावान्ब्रह्मचार्यस्मि ॥ ५० ॥

*पार्वती शंकरजी से विवाह होने के निमित्त तपस्या कर रही थी और इधर तारकासुर एक दानव महाप्रतापशाली ब्रह्मा, विष्णु और महादेव सब से अवध्य होकर महाउपद्रव मचा रहा था तब सभी देवता मिलकर ब्रह्मा के साथ विष्णु भगवान् के पास गये और उस दैत्य के बध का उपाय पूछा भगवान् ने कहा कि यह दैत्य और किसी से नहीं मरेगा यदि शंकरजी का पुत्र सेनापति हो और देवताओं की सेना तैयार हो तो इस दैत्य का बध होगा आजकल दक्षसुता हिमालय की कन्या होकर शंकरजी से विवाह होने के निमित्त तपस्या कर रही है और तपस्या की सिद्धि का समय भी आगया है तुम लोग सप्तर्षियों की सहायता से शंकरजी को विवाह करने के लिए उद्यत करो इस विवाह से पुत्र उत्पन्न होगा वही तारकासुर को मारेगा ।
[illegible]

हे अगस्त्य ! कार्तिक मास के वास्तव तत्त्वों के ज्ञाता और नि-
शाम के मर्मवेत्ता विद्वानों ने उन कन्याओं के लगातार कई ज
के परस्पर प्रेम को देखकर इन्हीं का एक ही नाम (कृत्तिका) रव
उन्हीं कृत्तिकाओं का दुग्ध मैंने अपने ६ मुखों से पिया है ॥ ४८, ४९

नोट—किसी कल्प की कथा है कि शंकरजी का विवाह दक्षप्रजाप
की कन्या से हुआ था इसलिये शंकरजी सर्वदेव शिरोमणि होने
भी दक्षप्रजापति के जामाता ही थे। एक समय ब्रह्मलोक में देव स
हुई जिसमें सभी देवता पहले ही से आए हुए थे, दक्ष प्रजापति कु
पीछे आए उनको सभा में उपस्थित देख सभी देवताओं ने उठक
अभिवादन और स्वागत किया परन्तु आदिदेव शंकरजी ने कु
भी नहीं किया। अपने जामाता की ऐसी धृष्टता देख दक्षप्रजापि
बहुत क्रुद्ध हुए और उस सभा से चलेगए, तब से शंकरजी से कुछ
भी सम्बन्ध नहीं रखते थे। कुछ काल के बाद दक्षप्रजापति ने एक
यज्ञ किया जिसमें शंकरजी को निमंत्रित करके नहीं बुलाया परन्तु
पिता के यज्ञ करने का समाचार सुनकर दक्षपुत्री विना निमन्त्रण के
ही पिता के घर जाने को उद्यत होगई और शंकरजी से आज्ञा मांगी
शंकरजी अपने श्वसुर के क्रुद्ध होने की कुल कथा कहकर दक्ष सुता
को बहुत समझाया परन्तु दक्षपुत्री ने एक न माना और पिता के
घर गई वहां जाकर यज्ञ में सब देवताओं का अंश देखा परन्तु
शंकरजी का भाग कहीं नहीं देखा और सब किसी ने कुशलमंगल
पूछा परन्तु दक्षप्रजापति ने अपनी कन्या को देखा तक नहीं, इसलिए
पीहर में पति का और अपना अपमान देख इर्षा के वश होकर
योगाग्नि से भस्म होगई। वही दक्षसुता पुनः हिमाचल के घर जाकर
अवतरित हुई और नारदजी उसकी हस्तरेखा देख " शंकरजी से विवाह
होगा " इतना कहकर पार्वती को तपस्या करने का आदेश दिया था सो*

षाण्मातुर इतिख्यातो हृष्ट पुष्टश्च सर्वदा ॥
नैष्ठिको ब्रह्मचार्यस्मि तासां योग प्रभावतः ॥ ५० ॥
सेनानीः सर्वदेवानां सर्वासुरनिकन्दनः ॥

सर्वदा तासामेवस्तन्यपानेनाहं हृष्टः पुष्टः षाण्मातुर इतिख्यातश्च तथा तासां योग प्रभावतः सर्वदेवानां सेनानीः सर्वासुर निकन्दनो नैष्ठिको निष्ठावान्ब्रह्मचार्यस्मि ॥ ५० ॥

*पार्वती शंकरजी से विवाह होने के निमित्त तपस्या कर रही थी और इधर तारकासुर एक दानव महाप्रतापशाली ब्रह्मा, विष्णु और महादेव सब से अवध्य होकर महाउपद्रव मचा रहा था तब सभी देवता मिलकर ब्रह्मा के साथ विष्णु भगवान् के पास गये और उस दैत्य के वध का उपाय पूछा भगवान् ने कहा कि यह दैत्य और किसी से नहीं मरेगा यदि शंकरजी का पुत्र सेनापति हो और देवताओं की सेना तैयार हो तो इस दैत्य का वध होगा आजकल दक्षसुता हिमालय की कन्या होकर शंकरजी से विवाह होने के निमित्त तपस्या कर रही है और तपस्या की सिद्धि का समय भी आगया है तुम लोग सप्तर्षियों की सहायता से शंकरजी को विवाह करने के लिए उद्यत करो इस विवाह से पुत्र उत्पन्न होगा वही तारकासुर को मारेगा। अनन्तर सप्तर्षियों ने शंकरजी का विवाह पार्वती से कराया परन्तु कई कोटि वर्ष विहार में ही बीत गये पुत्रोत्पत्ति की कोई आशा ही नहीं दीख पड़ी और इधर दानवों के घोर उपद्रवों से देवलोक मर्त्य लोक और पाताल पर्यन्त हाहाकार मच गया था तब ब्रह्माजी को आगेकर सभी देवता शंकरजी से पुत्र उत्पन्न करने की प्रार्थना करने के लिए कैलाश पर गये वहाँ ऐसा प्रबन्ध था कि शंकरजी का दर्शन ही दुर्लभ था तो अग्निदेव को कबूतर का रूप धारण करा इन्द्रादि सभी देवताओं ने गुफा के अन्दर भेजा इस छद्मवेषी अग्निदेव को देखते ही शंकरजी देवताओं के

उन्हीं माताओं के दुग्धपान करने में हृष्टपुष्ट हुआ और
इस नाम से मैं विख्यात हुआ और उन के ही अंश से
सब देवताओं का सेनापति हुआ और सभी राक्षसों का स
नैष्ठिक ब्रह्मचारी हुआ हूँ ॥ ५० ॥

र विलास में विघ्न डालने का कारण समझ कर, और शिव
त्याग कर अमोघवीर्य को स्कन्दित कर दिया उसको अग्नि ने
मुंह में उठा लिया और भय के मारे गङ्गा में डाल दिया तो
शाप जब अग्नि को उस वीर्य का असह्य तेज नहीं सह
ने तो एक सरकण्डे के वन में उगल दिया वहीं स्कन्द हु
के स्कन्दित वीर्य से उत्पन्न हुए इसलिए उनका नाम स्कन्द
अग्नि के मुख से उत्पन्न हुए इसलिए उनका नाम अग्निभू हु
सरकण्डों में उत्पन्न हुए इसलिए उनको सरजन्मा, भी कहते हैं।
जगह सरकण्डों में इन की उत्पत्ति हुई उसके समीप ही
पर जाने के लिए रास्ता था उसी रास्ते से प्रतिदिन वे ही छः
पाएं जो मुनि पत्नी हुई थीं स्नान के लिए आया करतीं
क रोज उन्होंने एक अद्भुत बालक सरकण्डे के वन में खेलते
र उठा लिया तथा इस बालक को मैं रक्खूंगी मैं रक्खूंगी कहकर
स्तनों से दूध पिलाने के लिए लड़ने लगीं उस समय स्कन्दजी ने छः
को धारण कर छओं का दुग्ध पान किया तब से इनका नाम ष
हुआ ६ माताओं का भाग एक बालक में बराबर हो उसको
में षाण्मातुर कहते हैं। जिसका विग्रह वाक्य षण्णां मातृणामपत्यं
षाण्मातुरः ऐसा होता है। और इस पुस्तक में स्कन्दजी ने
कहा है कि " तासां स्तन्यं मयापीतं मुखैःषड्भिर्द्विजोत्तम "
उनका दुग्ध मैंने अपने ६ मुखों से पीया है। एवं आगे कहा
" षाण्मातुर इति ख्यातः " अर्थात तब से मेरा नाम षाण्मातुर

ःप्रत्यब्दं कार्त्तिके मासिस्नानवेलामवाप्यताः ॥ ५१ ॥
अवलम्ब्यावतिष्ठन्ति पुनः स्नानोत्सुकाइव ॥

ताः कृत्तिका आकाशस्थापि कार्त्तिकेमासि स्नानवेलामवाप्य पुनःस्नानोत्सुका इव प्रत्यब्दं प्रतिवर्षं अवलम्ब्याकाशादवतरन्त्य इव पश्चिमाशायां क्षितिजामन्वेतिष्ठन्ति एतदुक्तंभवति वस्तुतस्तु स्नान वेला अरुणोदयकालः तस्मिन्समये प्रायः कार्त्तिकान्ते कृत्तिकातारा: पश्चिमक्षितिजेदृश्यन्ते तत्र कारणम् सूर्यो यस्मिन्नृक्षे भवति तदृक्षमेव सूर्योदयवेलायाम्पूर्वस्मिन्क्षितिजे दृश्यते । इति ज्यौतिष शास्त्रे स्पष्टम् एवं तस्माद्दृक्षाच्चतुर्दशं नक्षत्रम् तस्मिन्नेवकाले पश्चिमक्षितिजेलग्नं दृश्यते कार्त्तिके मासे पूर्णिमासन्न-काले यदासूर्यः क्रान्तिवृत्ते तुलान्ते वृश्चिकादौवोदेति तदा विशाखान्ते वा अनुराधादौ सूर्यो भवति । विशाखानुराधयोः

नोट—वे कृत्तिकायें आकाश से स्नान के लिये कार्तिक मास में ही उतरती हुई दील पड़ती हैं क्यों ? इसका उत्तर ज्योतिष शास्त्र से स्पष्ट होता है । क्योंकि ज्योतिष के सिद्धान्त ग्रन्थों में भूगोल खगोल ग्रहगोल के पारदर्शी विद्वान् लिखते हैं कि जिस समय सूर्य जिस नक्षत्र में होकर पूर्व की दिशा में उदित होता है उसी समय सूर्य नक्षत्र का चौदहवां नक्षत्र पश्चिम दिशा में पृथ्वी से लगाहुआ दीख पड़ता है यह सिद्धान्त है इसमें न्यूनाधिक कभी नहीं होसकता और राशिचक्र ग्रहों के साथ सदा पृथ्वी के चारों तरफ परिभ्रमण किया करता है सायन मेष के प्रातःकाल में अश्विनी पूर्व दिशा में और चित्रा पश्चिम में रहती है और तुलादि में चित्रा पूर्व में और अश्विनी पश्चिम क्षितिज में दीखपड़ती है चित्रा के सूर्य कार्त्तिकादि में होते हैं और कार्तिकी पूर्णिमा के लगभग विशाखया अनुराधा में सूर्य उदित होता है तो पश्चिम दिशा में प्रातःकाल के समय पृथ्वी में सटीहुई भरणी और कृत्तिका दीखती हैं मानों यह कृत्तिका भी कार्त्तिक की पूर्णिमा के स्नान वास्ते ही आकाश से उतररही है और प्रत्यक्ष पंचाङ्गों में देखिये तो कार्तिकी पूर्णिमा में कृत्तिका नक्षत्र का योग हुआ ही रहता है और इसी योगवश महीना का नाम कार्तिक है क्योंकि कृत्तिका ही में इसकी समाप्ति होती है । चन्द्र चारवश कृत्तिका नक्षत्र कार्तिकी पूर्णिमा को आती है इसलिए मूल में "कार्त्तिके कृत्तिका द्याये" ऐसा पद दिया है यही नहीं बल्कि सभी महीनों*

पूर्णिमदीदेनि तदा पश्चिमाशायां क्षितिजागमे कदाचिदधः कदाचिदूर्ध्वमरणः कृत्तिकाभ्यासिरस्यन्ते अन्यस्याः कृत्तिकाः पुनः स्नानोत्सुकाइवाकाशान्निपतन्ति इति कथनं ज्योतिष सिद्धान्त गत्यापि युक्तियुक्तमेवेति । पुनः प्रायः कार्तिक पूर्णिमायां कृत्तिका नक्षत्रमपि चन्द्रचारवशेन भवतीति पंचाङ्गे स्पष्टं तेनापिस्कन्दो-क्तिर्घटते ।

प्रतिवर्ष जब कार्तिक मास में स्नान का समय आता है तो वे कृत्तिकाएं आकाश से उतरती हुई दीख पड़ती हैं मानो फिर भी स्नान करने के लिए उत्सुक हुई हैं ।

तस्मात्पातक सघातकारिणि स्नान्ति वारिणि ॥ ५२ ॥
कार्तिके कृत्तिकाद्याधे तेयान्ति विमलांगतिम् ॥
ये पुनः स्नान्ति तन्मासि कपिलायतने मुने ॥ ५३ ॥
तेषां किम्वर्ण्यतेभाग्यं महाभागवतां भुवि ॥

*की पूर्णिमाओं में एक एक खास नक्षत्र का योग होता है जिससे प्रचलित महीनों के नाम है जिसका प्रसंग वश यहां लिखता हूं ज्योतिषशास्त्र में मास गणना सौर सावन नाक्षत्र और चान्द्र के भेद से चार प्रकार की है और जिस गणना से जो कार्य करने को कहा गया है उसमें वही कार्य कियाजाता है परन्तु चन्द्रमान दो प्रकार से प्रसिद्ध है हम लोग शास्त्र में दोनोंही के जगह २ विषय उपस्थित देखते है उनमें एक को अमान्त कहते है जिसका उपयोग गणित में प्रायः हुआ करता है दूसरा पूर्णान्त है जिसका उपयोग बहुधा व्यवहार में होता है और पूर्णिमा को जो नक्षत्र आता है उससे ज्योतिषियों ने महीनों के नाम बनाये हैं जैसे चित्रा युक्त पूर्णिमा होने से चैत्र (चैत्र) विशाखा युक्त पूर्णिमा होने से वैशाख ज्येष्ठा युक्त पूर्णिमा होने से ज्येष्ठ एवं उत्तराषाढ़ से आषाढ श्रवण से श्रावण उत्तर भाद्रपदा से भाद्रपद अश्विनी से आश्विन मारवाड़ में आसोज कृत्तिका युक्त पूर्णिमा को कार्तिकी कहते है उससे कार्तिक मास होता है, एवं मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुण इत्यादि । संस्कृत में चित्र या युक्ता पौर्णमासी चैत्री तस्यां भवोऽयंमासः चैत्रः विशाखया युक्ता पौर्णमासी वैशाखी तत्र भवोऽयंमासो वैशाखः इत्यादि विग्रह से मास नाम सिद्ध होते हैं ।

यतः पुनर्जननमरणादि संसारबन्धनमुक्ताः कृत्तिकातारा: कापिलेये कार्तिकस्नानवैभवेनैवजातास्तस्मात्पातकसंघात कारिणि वारिणि कार्तिकेमासे कृत्तिकाछाये अर्थात्पूर्णिमायां ये स्नान्ति ते विमलांगतिं यान्ति ॥ यतः पूर्णिमायां कृत्तिका योगो मत्र्येवेति ॥ ५२, ५३ ॥

कार्तिक मास में कपिलतीर्थ के स्नान का ही यह विभव है कि वे मुनि कन्याएं पुनर्जन्म-मरणादि सांसारिक बन्धनों से मुक्त होकर तारों के रूप में आकाश की शोभा बढ़ा रही हैं इसलिए महापातकों का नाश करनेवाला जो कपिलसरोवर है इस में जो कार्तिकी पूर्णिमा के दिन स्नान करते हैं उन की विमल गति होती है और जो कार्तिक मासभर स्नान करते हैं उन महाभागवतों के भाग्य का वर्णन कौन कर सकता है ॥ ५२, ५३ ॥

इति ते सर्वमाख्यातं धात्रीणां मे विचेष्टितम् ॥ ५४ ॥
कपिलालयस्नानपुण्याज्जातं लोकैक साक्षिकम् ॥

(स्पष्टम्)

हे अगस्त्य ! इस प्रकार कपिलालय का स्नान के पुण्य से संसार में साक्षिरूप जो मेरी धात्रियों के कृत्य हैं उनको तुम से मैंने कहा है ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे स्कन्दागस्त्यसम्वादे कपिलायतनमाहात्म्ये तीर्थवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ।

—:०:—

पंचमाध्यायविवृतिः ।

(सूत उवाच)

इत्युक्त्वा पुनरप्याह महासेनो महाद्भुतम् ॥
कपिलालय माहात्म्यं सेतिहासं महामुने ॥ १ ॥

अस्मिन्नध्याये पंचमाध्याये स्कन्दःपुनरगस्त्यं कपिलालय माहात्म्यं सेतिहासं वर्णयति इत्युक्त्वेति हे महामुने शौनक ! इत्युक्त्वार्थात् स्वधात्रृणां ताराहशायां कृत्तिकानां चरितमुक्त्वा महासेनः स्कन्दः महाद्भुतं महाश्चर्य्यकरं सेतिहासं कपिलालय माहात्म्यं पुनरप्याह ॥ १ ॥

सूतजी कहते हैं कि हे मुनि शौनक ! महासेन स्कन्द देव ने चतुर्थाध्याय में इस प्रकार अपनी धात्री कृत्तिकाओं का चरित्र वर्णन करने के अनन्तर महाश्चर्यकर इतिहास के साथ कपिलालय माहात्म्य को फिर भी इस पांचवें अध्याय में कहा था सो सुनो ॥ १ ॥

महापातक संघात विघातक पटीयसीम् ॥
कपिलायतनींगाथां मन्मैत्रा वरुणे शृणु ॥ २ ॥

हे मैत्रावरुणे ! अगस्त्य ! महांश्चासौपातकाश्चः महापातकाः महापातकानां संघातः समूहो महापातकसंघातः तस्य विघातके विध्वंसने पटीयसीं समर्थतरा ताम् महापातकसंघातविघातक पटीयसीम् महामहा पातकजाल विनाशदक्षां कपिलायतनीं गाथां कथां मत् कोर्थः मत्तः शृणु ॥ २ ॥

हे मैत्रावरुणि ! बड़े २ पातकों के समूहों को विनाश करने में समर्थ जो कपिलायतन की कथा है उसको सुनो ॥ २ ॥

कदाचित्कार्तिके मासिकान्ते प्रान्ते दिनेषु च ॥
समाजोऽभून्महांस्तत्र देशदेशनिवासिनाम् ॥ ३ ॥

कदाचित् पूर्वस्मिन्समये-एकदा कार्तिके अर्थात्कार्तिकमासे मासिकप्रान्तदिनेषु चात्र पादपूरकोऽव्ययो विभाति । मासे भवानि मासिकानि प्रान्ते यानि दिनानि-शुक्लैकादशीमारभ्य पूर्णिमापर्यन्तानि तानि मासिकप्रान्तदिनानि तेषु देशदेशनिवासिनां मनुष्याणां समाजोऽभूत् ॥ ३॥

एक समय में कार्तिक मास के अन्त के पांच दिनों में देश देश के निवासी मनुष्यों का एक समाज एकत्र हुआ ॥ ३ ॥

कस्मिँश्चिद्दिवसे पुण्ये सत्समाजस्समुद्यतः ॥
तीर्थप्रदक्षिणां कर्तुं यात्राफलसमीहया ॥ ४ ॥

कस्मिंश्चित्पुण्ये दिवसे यात्रा फल समीहया यात्रा फल प्राप्ति कामनया तीर्थं प्रदक्षिणीकर्तुं सन् समाजः सतां साधूनां समाजस्समुद्यतः तीर्थप्रदक्षिणाय समुद्यतोऽभूत् ॥ ४ ॥

किसी पुण्यकाल के दिन में यात्रा के पूर्ण फल प्राप्ति की कामना से सज्जनों का समाज तीर्थ की प्रदक्षिणा करने के वास्ते उद्यत हुआ ॥ ४ ॥

सर्वे प्रदक्षिणां चक्रुर्नितरां च कुतूहलिनः ॥
भगवद्भावसम्पन्ना नानादानादराशयाः ॥ ५ ॥

तस्मिन्पुण्ये समाजे भगवद्भावसम्पन्नाः सर्वे भगवद्भक्तिपरायणाः नानादानादराशयाः नानादानानि तेषु कालेषु समादरं प्राप्ताः स्नाताः सर्वेऽपि सादरं निवसन्तः नानादानादराशयाः अनेकदानप्रदानजातमनोरथाः नितरां कुतूहलिनश्च सर्वे प्रदक्षिणं चक्रुः ॥ ५ ॥

उसी समय अनेक स्थानों से कुछ भिक्षुक लोग और गृहस्थी (गृहस्थ) लोगों ने भी भगवान् के नाम को जपते हुये प्रदक्षिणा की ॥५॥

तत्र कश्चिद्भिक्षुरभूत् स्वशुना सहितोवशी ॥
सोऽपि प्रदक्षिणं पुण्यंचक्रे सर्वजनैः सह ॥ ६ ॥

तत्र समाजे स्वशुनासहितः अवशी अहर्निशं स्वकुटुम्ब परिपोषणाय स्वोदरपूरणायच भिक्षार्थं लुब्धचित्तः कश्चिद्भिक्षुरभूत् गतवानितिभावः सोऽपि सर्वजनैः सह प्रदक्षिणं चक्रे ॥ ६ ॥

उस समाज में अपने कुत्ते को साथ लेकर कोई लुब्धचित्त भिक्षुक घुस गया और उसने भी सब लोगों के साथ उस पुण्य प्रदक्षिणा को किया ॥ ६ ॥

तस्यानुयायी तच्छ्वापिचक्रे तीर्थं प्रदक्षिणां ॥
नानाभाव युतो लोको दृष्ट्वातं विस्मितोऽभवत् ॥ ७ ॥

तस्य भिक्षोरनुयायी सहानुगन्ता तत्तस्यश्वा इतिविग्रहात् तच्छ्वापि तीर्थप्रदक्षिणां चक्रे कृतवान्। नानाभावयुतोलोक स्तंश्वानं प्रदक्षिणांकुर्वन्तं दृष्ट्वा विस्मितोऽभवत् ॥ ७ ॥

उस भिक्षुक के पीछे पीछे चलनेवाले कुत्ते ने भी तीर्थ की प्रदक्षिणा की, यह देख अनेक भाव से युत समाज के सभी लोग आश्चर्यान्वित हो गये ॥ ७ ॥

केचित्तंभर्त्सयन्तिस्म धिक्कुर्वन्तिस्मकेचन ॥
तथापि भिक्षोः पार्श्वं स न विमुंचति वै मनाक् ॥ ८ ॥

केचित्तंश्वानं भर्त्सयन्तिस्म भर्त्सनां दण्डप्रहाररूपताड़नां कुर्वन्तिस्म परश्वर्थे भर्त्सना लगुडप्रहाररूपेणभवति। केचन तं धिक्

कुर्वन्तिस्म अर्थात् दुत्कारशब्देन स्वसामीप्यात्पृथक् कुर्वन्तिस्म लोके धिक्शब्दस्य पर्यर्थे दुरदुर शब्दः दूर करणे उपयुक्तोभवति। तथापि स श्वा कुक्कुरः भिक्षोः पार्श्वे सामिप्यं मनाक् स्तोकमपि न विमुंचतिस्म लोकैः दुरदुरादिशब्देन लगुडादिप्रहारेणच पीड्यमानोपि स्वस्वामिनः भिक्षोरनुगच्छन्नेवासीत् ॥ ८ ॥

कोई उस कुत्ते को भर्त्सना करते थे लकड़ियों से मारते थे कोई दुरदुराते थे तोभी वह अपने मालिक (उस भिक्षुक) के पास से नहीं हटता था ॥ ८ ॥

केचित्तत्र वदन्तिस्मजना आचार तत्पराः ॥
श्वायं स्पृशति सर्वान्नः प्रगृह्योद्वास्यतां वहिः ॥ ९ ॥

केचिज्जनाः आचारतत्पराः सदा शौचाचारयुक्तास्तत्र समाजे वदन्तिस्म यदयं श्वा नः सर्वान् स्पृशति एनं हठात् प्रगृह्य वहिरुद्वास्यतां निष्कास्यताम् ॥ ९ ॥

उस समाज में जो बड़े आचार-विचार की विडम्बना करनेवाले मनुष्य थे वे कहते थे कि यह कुत्ता हमलोगों को स्पर्श करेगा इसको पकड़कर बाहर निकाल दो ॥ ९ ॥

अन्ये पुनः शान्ति पराः नैवं कार्यं कदाचन ॥
एवं तान् प्रवदन्तिस्म सांत्वयानाः स्मिताननाः ॥ १० ॥

पुनरन्ये शांति पराः शांति प्रियाः [illegible] सततमिप- दास्यमुखा जनाः कदाचन एवं [illegible] कुक्कुरस्य समाजाद्वहि [illegible] गन्तः प्रवदं [illegible]

फिर उस समाज के और लोग जो हमेशः शान्ति को प्यार करने वाले और सब से थोड़ी हंसी के साथ प्रिय वचन बोलने वाले, राग द्वेष रहित महात्मा थे। जो प्राणीमात्र को एक सा देखते थे वे उन लोगों (जो कुत्ते को पकड़कर समाज से बाहर करने को उद्यत थे) से, उस भिक्षुक (जिसका वह कुत्ता था) के साथ कहीं विवाद न बढ़ जाय इस विचार से समझाते हुवे कहने लगे कि ऐसा काम कभी नहीं करना चाहिये अर्थात् उस कुत्ते को बाहर कभी नहीं निकालना चाहिये ॥ १० ॥

तान्प्रत्यूचुः पुनस्तेतु स्वाचाराग्रहकारिणः ॥
भवतां किंनुवक्तव्यं यूयं ब्रह्मविदःक्षितौ ॥ ११ ॥
शुनिचैवश्वपाकेच परं ब्रह्मैव पश्यथ ॥
एवं वचनवक्रोक्त्या विविधुस्तांस्तमोयुताः ॥ १२ ॥

सर्वत्रैव समाजे सर्वे त्रिधा मनुष्या एकत्रीभवन्ति तथैवत्रापिच। प्रदक्षिणां कुर्वति शुनि, प्रदक्षिणं कुर्वतांजनानां मध्यतो दलद्वयं समुत्पन्नम् तत्र राजसतामसानामेकंदलम् सात्त्विकानांच द्वितीयम् प्रदक्षिणकर्मणिरतंश्वानं दृष्ट्वा उभयदलद्वये विवादस्समुपस्थितः प्रदक्षिणपथे शुनोगमनं राजसतामसानां बाह्यसदाचारप्रदर्शिनां मतेऽनर्गलमासीदतस्ते तं बहिःकर्तुमुद्यताः सात्त्विकास्तु मा। नैवं कार्य्यमिति कथित्वा तान् सान्त्वयन्तिस्म। एवं परस्परं विवादे समभ्युद्गमाने। तामसानां वाक्यम् तान्प्रत्यूचुरित्याद्यारभ्याऽभवत् ॥ स्वाचाराग्रहकारिणः स्वाचाराभिमानिनस्तमोयुक्तास्तामसराजसजनास्ते तान् सात्त्विकान्पुनः प्रत्यूचुः पूर्वं सात्त्विकवचनं श्रुत्वा, पुनरूचुरिति। यूयं क्षितौ ब्रह्मविदः भवतां किंनुवक्तव्यं यतो यूयं शुनि तथैव श्वपाके च परं ब्रह्मैव पश्यथ एवं वचनवक्रोक्त्या वाग्बाणेन तान् विविधुर्विद्धवन्तः ॥ ११, १२ ॥

जहां कहीं ज्यादा मनुष्य एकत्र हो जायें उसको समाज या मेला कहते हैं और ऐसे समाज में सब प्रकार के मनुष्यों का रहना स्वाभाविक है और उनमें अनेक प्रकार का प्रसंग भी उठजाना स्वाभाविक है, यहां पर जो समाज एकत्र था उसमें भी सतोगुण रजोगुण और तमोगुण सभी प्रकृति के मनुष्य थे और प्रसंग उस भिक्षुक के कुत्ते का आ पड़ा। भिक्षुक के कुत्ते को समाज के साथ प्रदक्षिणा करते देख समाज में दो दल होगये। एक दल तो रजोगुण तमोगुणवालों का बनगया, दूसरा सतोगुणियों का, और तमोगुणी जो बाहर २ से अपने सदाचार का भारी आडम्बर फैलाये थे वे कहते थे कि कुत्ते को बाहर निकालदेना चाहिये हम लोगों को छूकर अपवित्र करेगा। और सात्त्विक कहते थे कि ऐसा नहीं करना चाहिये। यहीं से विवाद आरंभ हुआ। अब आगे वादविवाद उत्तर प्रत्युत्तर जैसा चला सो कहते हैं। सात्त्विकों के मना करने पर तमः प्रकृतिवाले बोले, कि आपका क्या कहना है? आप लोग तो इस पृथ्वी में साक्षात् ब्रह्मज्ञानी हैं जैसे अपने में ब्रह्म को देखते हैं वैसे ही एक कुत्ते और एक चाण्डाल में भी परब्रह्म को देखते हैं। इस प्रकार अपने व्यंग्यवचन के बाणों से उनको बेधने लगे॥ १२, १

पुनः प्रौढिंसमाश्रित्य तान् प्रत्याहुस्मराजसाः ॥ १४॥
विमानमस्य मोक्षाय गगनादागमिष्यति ॥

पुनः राजसाः प्रौढिंसमाश्रित्य रोषख्यातिरौद्ररूपमाश्रित्य तान् सात्विकानूचुः यदस्य शुनोमोक्षाय गगनाद्विमानमागमिष्यति ॥ १४ ॥

फिर राजस प्रकृतिवाले बडे उत्तेजित होकर सात्विकों से बोले कि आपलोग इसका इतना पक्ष कर रहे हैं मानो इसके मोक्ष के वास्ते आकाश से विमान आवेगा ॥ १४ ॥

स्मित्वा ते प्रवदन्तिस्म पुनस्तान्मत्सराघृतान् ॥ १५ ॥
विमानं भवतां पूर्वमागमिष्यति निश्चितम् ॥
येषामाचारनैपुण्यमेतादृक् संप्रवर्तते ॥ १६ ॥

ते सात्विकाः पुन स्तान् मत्सरान्वितान् प्रौढिमुपागतान् जनान् स्मित्वा प्रवदन्तिस्म यत्पूर्वंभवतामेव विमानं निश्चितम् आगमिष्यति। येषां भवतामाचारनैपुण्यमेतादृक् संप्रवर्तते ॥ १६ ॥

वे सात्विक लोग उन मत्सरियों से थोड़ा हंसते हुवे फिर बोले कि इस कुत्ते के वास्ते विमान क्यों आवेगा ? यदि विमान आवेगा तो पहले आप लोगों के वास्ते ही, क्योंकि आप लोगों का आचार विचार इस प्रकार बढ़ा-चढ़ा है ॥ १६ ॥

एवं तत्र जना ब्रह्मन्प्रवदन्ते परस्परम् ॥
स्वस्वभावानुरोधेन रजःसत्वतमोयुताः ॥ १७॥

हे ब्रह्मन् ! एवं तत्र रजःसत्वतमोयुता जनाः स्वस्व भावानुरोधेन परस्परं प्रवदन्तेस्म ॥ १७ ॥

हे भगवन् अगस्त्यजी ! उस समाज के राजस तामस और सात्विक प्रकृति वाले मनुष्य अपनी २ प्रकृति के अनुकूल इस प्रकार परस्पर वादविवाद कर रहे थे ॥ १७ ॥

तथा विवदमानेषु नानाजल्पेषु वैनृषु ॥
स्वस्वामी सस्मितास्यःसन् प्रदक्षिणमवर्त्तत ॥ १८ ॥

तथा पूर्वोक्तवत् नानाजल्पेषु जल्पं निरर्थकं वचनम् तेषु अनेक निरर्थकालापेषु विवदमानेषु परस्परं विवादयत्सु नृषु मनुष्येषु वै इति निरर्थकमव्ययमिति केवलं पादपूरणे बोध्यम् । स स्वस्वामी भिक्षुकः स्मितास्यः सन् परस्परं निष्प्रयोजनमेव विवदन्तं दलद्वयं पश्यन् दलद्वयस्यमनुजान् हसन् इतिभावः प्रदक्षिणमवर्तत प्रदक्षिणासमाप्तिमकरोत् ॥ १८ ॥

इस तरह दोनों पक्षवाले मनुष्यों में परस्पर निष्प्रयोजन विवाद हो रहा था तबतक उस कुवे के स्वामी भिक्षुक ने प्रसन्नता पूर्वक अपनी प्रदक्षिणा को समाप्त करलिया ॥ १८ ॥

सर्वे सामाजिकाश्चक्रुस्तीर्थेऽस्य प्रदक्षिणम् ॥
स्वापि स्वस्वामिना सार्द्धं चक्रे चारु प्रदक्षिणम् ॥१९॥

अत्र तीर्थे सर्वे सामाजिकाः समाजस्था मनुष्याः प्रदक्षिणं चक्रुः स्वापि स्वस्वामिना भिक्षुकेण सह चारु इति क्रिया विशेषणं प्रदक्षिणं चक्रे ॥ १९ ॥

सभी समाज के मनुष्यों ने उस तीर्थ की प्रदक्षिणा की और उस कुवे ने भी अपने स्वामी के साथ प्रदक्षिणा करली ॥ १९ ॥

यस्थानात्स्वपगारभ्य प्रदक्षिणमपूर्वम ॥
पुनस्तत्स्थानमासाद्य सर्वे विश्रांतिमागताः ॥ २० ॥

यत्र यस्मात्स्थानात् गमनारम्भोत्थानं कृत्वा प्रदक्षिणं कुर्वन्त पुनस्तत्स्थानमागत्य तत्रागत्य सर्वे विश्रान्तिमागताः विश्राममापुरिति ॥ २० ॥

उन मनुष्यों ने जिस स्थान में प्रदक्षिणा करना आरंभ किया था फिर उसी स्थान पर आकर सबों ने विश्राम किया ॥ २० ॥

आचम्य विधिवद्वारि क्षणमात्रं स्थिताः क्षितौ ॥
श्वापि तत्र समागत्य किंचित्पीत्वा जलं शुचि ॥२१॥
समासाद्य सरस्तीरं निजनेत्रेन्यमीलयत् ॥

विश्रांतिस्थाने समागताः सामाजिकाः वारिजले विधिवद्विधिपूर्वकमाचम्य क्षितौ क्षणमात्रं स्थिताः क्षणमात्रं तत्रैवावसन् तावत् श्वापि तत्र समागत्य शुचि पवित्रं जलं किञ्चित्पीत्वा पुनः सरस्तीरं समासाद्योपविश्य निजनेत्रे न्यमीलयत् ॥

विश्राम स्थान पर आये हुए सभी मनुष्य जल में विधिवत् आचमन करके सरोवर के तट की भूमि पर कुछ काल तक ठहर गये तबतक वह कुत्ता भी वहां आकर उस सरोवर का पवित्र जल पीकर पुनः तीर पर आ बैठा और अपने नेत्रों को बन्द करलिया ॥

पश्यतां सर्वलोकानां विस्मयाविष्टचेतसाम् ॥ २२ ॥
अकस्मादेव विप्रेन्द्र ! सद्यः प्राणानवासृजत् ॥

हे विप्रेन्द्र ! विस्मयाविष्टचेतसाम् सर्वलोकानां पश्यताम् अकस्मादेव सरवा सद्यः तत्कालं प्राणान् अवासृजत् त्यक्तवान् ॥

हे विप्रेन्द्र ! आश्चर्य के साथ सब लोगों के देखते २ उस कुत्ते ने एकाएक अपने प्राणों को परित्याग कर दिया ॥

ततः क्षणात् समायान्तं विमानं भास्वरं दिवः ॥ २३ ॥
तत्रास्थाय स्थिरं दिव्यं तेजोरूपं समाश्रितः ॥
ययौ पश्यत्सु सर्वेषु परंधामदिवौकसाम् ॥ २४ ॥

ततस्तदनन्तरं क्षणान्मुहूर्तेनैव भास्वरं द्युतिमन्तं विमानं दिवः स्वर्गात् समायान्तं आगतवन्तं दृष्ट्वा तत्र विमाने स्थिरमास्थाय स्थित्वा दिव्यं भास्वरं तेजोरूपमाश्रितः तेजोरूपंदधार ॥ सर्वेषु जनेषु पश्यत्सु दिवौकसाम् देवानां परंधाम स्थानं देवलोकं ययौ गतवान् ॥ २४ ॥

इसके बाद क्षणभर में सुन्दर चमकता हुवा विमान आकाश से आया उसको देख उस पर सुन्दर तेजोमय रूप धारण कर दृढ़ता से बैठ गया ॥ और सब लोगों के देखते २ देवलोक को चला गया ॥ २४ ॥

उन्मुखाः केचिदासन्वै केचिदासन्नवाङ्मुखाः ॥
तदृष्ट्वा महदाश्चर्यं तत्र तीर्थे द्विजोत्तम ॥ २५ ॥

हे द्विजोत्तम ! केचित् ये श्वपक्षवादिनः सात्विकास्ते तत्र तीर्थे तन्महदाश्चर्यं दृष्ट्वा उन्मुखाः विमानोन्मुखाः सन्तः विमानं पश्यन्नासन् । तथा येकेचित् श्वबहिर्निष्काशनतत्पराः तमोयुतास्ते लज्जया अवाङ्मुखा अवनिम्पश्यन् आसन् ॥ २५ ॥

जो लोग समदर्शी और कुत्ते के पक्ष में विवाद करनेवाले सात्विक मनुष्य थे वे तो उर्द्ध्वमुख होकर इस एक अद्भुत घटना को देख रहे थे और जो राजस तामस प्रकृतिवाले कुत्ते को समाज से बाहर निकाल देने में तत्पर हुए थे उन्होंने लज्जावश नीचे मुख कर लिये ॥ २५ ॥

इति पृष्टः सूतः पार्वतीनन्दनोमुनिस्कन्दः इव प्रहर्षितः पुरः ऋषिभिर्यं पुराणादि आगमपर्यन्तं पुराणं पुरातनं पुण्यं पवित्रं पुरातनं पुनः प्राह उवाच ॥ ३ ॥

सूतजी अपने श्रोताओं से बोले कि इस प्रकार जब सनत्कुमार ने स्कन्द भगवान् से प्रश्न किया तो पार्वतीनन्दन भगवान् स्कन्दजी ने पुराणों के पुराणादि आगमों से प्रसन्न होकर पवित्र और प्राचीन इतिहास को सुनाया ॥ ३ ॥

(स्कन्द उवाच)

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि पुरावृत्तं कथानकम् ॥
एकस्मिन्दिवसेवृत्तं देशे गुर्जरसंज्ञके ॥ ४ ॥

हे विप्र ! पुरावृत्तं पूर्वजातं कथानकं प्रवक्ष्यामि कथयामि शृणु ॥ यदेकस्मिन् समये गुर्जरसंज्ञके देशे वृत्तं अर्थात् घटितम् ॥ ४ ॥

हे विप्र ! एक पूर्वकालिक वृत्तान्त कहता हूं, सुनो (जो गुर्जर देश में एक समय में हुआ था) ॥ ४ ॥

अस्ति गौर्जरिकोदेशोधनिनामाश्रयः परः ॥
यत्रत्याहिप्रजाः सर्वाः सदाचारपरायणाः ॥ ५ ॥

धनिमाश्रयोनिवासस्थानम् यत्र स गौर्जरिकः गुर्जरनामको देशोऽस्ति यत्रत्या यत्रभवाः सर्वाः प्रजाः सदाचारपरायणाः सन्तीति अत्र वर्तमान कालिकी क्रिया भूतकाल बोध्या यथा कुमारसंभवे । अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयोनाम नगाधिराज इति ॥ ५ ॥

गुर्जर देश (गुजरात) में धनियों के निवास योग्य एक परम उत्कृष्ट स्थान था जहां की प्रजा सदाचार सद्धर्म में सदा परायण रहती थी ॥ ५ ॥

पुरंजयति तद्देशे नाना हर्म्यसमाकुले ॥
सर्वं देशशिरोरत्नभूतं सदलकोपमम् ॥

तद्देशे अर्थात् गुर्जरे देशे नाना हर्म्यसमाकुलम् अनेक धनि भवनेन सुशोभितम् " हर्म्यंतु धनिनां वासः इत्यमरोक्त्या " सर्वदेशशिरोरत्नभूतं लक्ष्मीनिवासकारणादिति अलकोपमं अलकापुरी कुबेरनगरी तत्सदृशं सत् पुरं ग्रामं जयति सर्वोत्कर्षेण विराजते ॥६

उस गुर्जर देश में अनेकानेक उत्तम उत्तम गृहों से सुशोभित सब देशों का मुकुट अलकापुरी सदृश एक ग्राम था ॥ ६ ॥

यस्य हर्म्यस्थलेष्वद्धा गौरांग्यः संचरन्तिहि ॥
शारदाभ्रप्रविष्टानां क्षिपंत्योविद्युतां द्युतिम् ॥ ७ ॥

यस्य पुरस्य हर्म्म्यस्थलेषु हर्म्यप्रदेशेषु अद्धा साक्षात् शारदाभ्रप्रविष्टानां विद्युतां शारदीयमेघसंन्निकर्षोद्गतानां सौदामिनीनां द्युतिं छविं क्षिपन्त्यः सर्वतः प्रसारयन्त्यो गौराङ्ग्यस्सुन्दर्य्यः सञ्चरन्ति इतस्ततोभ्रमन्तिस्म हीति पादपूरकः । अस्यायंभावः यथा शुभ्रवर्णेशारदीयाभ्रे इत उतः स्वकान्तिमुद्गिरन्त्याश्चलायाः परिभ्रमं सम्पद्यते तथैवास्यग्रामस्य शारदीयाभ्रसंनिभ श्वेतहर्म्यप्रदेशेषु विद्युद्विकाशसदृशीनां कामिनीनामपि गमनमासीत् ॥ ७

जिस ग्राम के धनिक गृहों में सुंदर २ स्त्रियां शरत्काल के मेघ में प्रविष्ट बिजली की तरह अपनी प्रकाशमयी सुन्दरता से चमकती हुई फिरती थीं ॥ ७ ॥

नरादेवप्रभा यत्र नार्य्योदेवीसमानभाः ॥
गृहा अभ्रंलिहा यत्र स्वारामा नन्दनप्रभाः ॥ ८ ॥

अंशेन तेन स्ववसोर्वापीकूपसरांसिच ॥
दिव्यान्देवालयांश्चापि कारयामास वैश्यजः ॥ ११ ॥

स्ववसोः स्वकीयधनस्य तेन अंशेन धनषष्ठांशेन वैश्यजः वापीकूपसरांसि वापीकूपतडागादीन् दिव्यान् मनोहरान्देवालयान् देवमन्दिराणिच कारयामास ॥ ११ ॥

उस श्रीकृष्णार्पित धन के षष्ठांश से वह वैश्य वापी कूप तडाग और सुन्दर सुन्दर देवालयों को बनवाता था ॥ ११ ॥

नाना विधानि दानानि चक्रे शास्त्रोक्तमार्गतः ॥
तथान्नसत्रं विदधे क्षुधितेभ्योदिवानिशम् ॥ १२ ॥

शास्त्रोक्तमार्गतोनानाविधानि दानानि चक्रे तथा क्षुधितेभ्यो दिवानिशम् अन्नसत्रं अन्नमयंयज्ञं विदधे ॥ १२ ॥

वह वैश्य शास्त्रोक्त विधान से अनेक प्रकार के दान करता था और क्षुधितों के लिये दिनरात अन्न दान करता रहता था ॥ १२ ॥

एवं प्रवर्तमानस्य वणिजस्तस्य सत्तम ॥
पुत्राः पंचाऽभवन्भव्याः बहुदाक्षिण्यसंयुताः ॥ १३ ॥

हे सत्तम ! एवं प्रवर्तमानस्य सुकृतरतस्य तस्य वणिजः ! भव्याः मनोहराः अतिसुचतुराः पंच पुत्रा अभवन् ॥ १३ ॥

इस तरह सुकर्म में तत्पर रहनेवाले उस वैश्य के उत्तम २ गुणों से संयुक्त सुन्दर २ पांच पुत्र हुए ॥ १३ ॥

एतेषां ज्येष्ठ आसीद्यः सजन्मान्धस्स्वकर्मणा ॥
बुद्धिमान् सुविवेकश्च सर्वेष्वङ्गेषु सुन्दरः ॥ १४ ॥

(स्पष्टम्)

भगवान की कृपा और उसके पुण्य कर्म के बल से उस स्त्री के उस अन्धे से भी बहुत गुणवान् पुत्र उत्पन्न हुए ॥

एवं प्रवर्ततस्तस्य सत्पुत्रस्यच सत्पितुः ॥ १८ ॥
कालोमहान्व्यतीयाय बहुभोगभुजोभुवि ॥

एवं प्रवर्ततः गार्हस्थ्यधर्मं वर्तयतोबहुभोगभुजस्तस्य सत्पुत्रस्य सत्पितुश्च महान्कालोव्यतीयाय ॥

इस तरह गार्हस्थ्य धर्म का परिपालन करते हुए और अनेक उत्तम भोगों को भोगते हुए उन पिता पुत्रों को बहुत दिन बीत गये ॥

महामौल्येन यत्क्रीतं नाना देशसमुद्भवम् ॥ १९ ॥
धनं धान्यं फलं वस्त्रं भुंक्तेऽसावुरुजोत्तमः ॥

महामौल्येन महार्घेण नाना देशसमुद्भवम् नाना देश जातं धनं धान्यं फलं वस्त्रं यत्क्रीतम् तदसावुरुजोत्तमः भुंक्ते भुक्तवानिति यत्र वैश्यार्थे उरुजः शब्दोवैदिकः ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीदित्यृचायांस्पष्टम् ॥

महगे भाव में उस वैश्य ने जो अनेक देशों से धन, धान्य, फल और वस्त्रादि खरीदे थे उसका वह स्वयं भोग करता था ॥

कस्मिंश्चित्कालपर्य्याये मुद्राः काच प्रभानवाः ॥ २० ॥
वणिजा केन ते विप्र तद्वैश्योपायनीकृताः ॥

हे विप्र! कस्मिंश्चित्कालपर्य्याये कस्मिन्समये काचप्रभाः काच सदृशप्रभावन्तो नवा मुद्राः केन वणिजा वैश्येन तद्वैश्योपायनीकृता अर्थात्तस्मै वैश्यायोपहारं दत्ताः ॥

एतेषां पुत्राणां मध्ये यः ज्येष्ठः पुत्रः स स्वकर्मणा स्वकीय पूर्वजन्मार्जितकर्मणा जन्मान्धोऽपि सर्वेषु अंगेषु सुन्दरः कमनीय सुविवेकः सुज्ञानी सुद्धिमानासीत् ॥ १४ ॥

उन पांचों पुत्रों में जो ज्येष्ठ था वह अपने पूर्व जन्म के कर्मों के वश जन्मांध था परन्तु सब अंगो से सुन्दर और सद्विचार सद्बुद्धि से युक्त था ॥ १४ ॥

पंचपुत्रेण वणिजा वसता तत्पुरोत्तमे ॥
अन्धोऽपिनिजपुत्रोऽसौ धनयोगेन भूरिणा ॥ १५ ॥
विवाहितोवरां कन्यां स्व सम्बन्धिकुलोद्भवाम् ॥

स्वकीयेन पंचपुत्रेणसह तत्पुरोत्तमे वसता तेन वणिजा वैश्येन भूरिणा धनयोगेन भूरिद्रव्यदानेन स्व सम्बन्धिकुलोद्भवां वरां श्रेष्ठां कन्यां अन्धोप्यसौ निजपुत्रोविवाहितः ॥

अपने पांचों पुत्रों के साथ उस उत्तम नगर में रहनेवाले उस वैश्य ने बहुत धन देकर अपने सम्बन्धी की एक सुन्दरी कन्या से अन्धे पुत्र का भी विवाह कर दिया।

सा सती तं स्वभर्तारं सिषेवे शुद्धमानसा ॥ १६ ॥
वैचित्रवीर्यराजानं गांधारीव पतिव्रता ॥

(स्पष्टम्)

वह पतिव्रता कन्या अपने अन्धे पति की सेवा शुद्ध मन से करती थी जैसे राजा विचित्रवीर्य की पतिव्रता गान्धारी ने सेवा की थी।

तस्यां तस्यापि सत्पुत्रा बभूवुर्बहुदक्षिणाः ॥ १७ ॥
ईश्वरस्य प्रसादेन स्वेन पुण्येन कर्मणा ॥

(स्पष्टम्)

भगवान की कृपा और उसके पुण्य कर्म के बल से उस स्त्री के उस अन्धे से भी बहुत गुणवान् पुत्र उत्पन्न हुए ॥

एवं प्रवर्ततस्तस्य सत्पुत्रस्यच सत्पितुः ॥ १८ ॥
कालोमहान्व्यतीयाय बहुभोगभुजोभुवि ॥

एवं प्रवर्ततः गार्हस्थ्यधर्मं वर्तयतोबहुभोगभुजस्तस्य सत्पुत्रस्य सत्पितुश्च महान्कालोव्यतीयाय ॥

इस तरह गार्हस्थ्य धर्म का परिपालन करते हुए और अनेक उत्तम भोगों को भोगते हुए उन पिता पुत्रों को बहुत दिन बीत गये ॥

महामौल्येन यत्क्रीतं नाना देशसमुद्भवम् ॥ १९ ॥
धनं धान्यं फलं वस्त्रं भुंक्तेऽसावुरुजोत्तमः ॥

महामौल्येन महार्घेण नाना देशसमुद्भवम् नाना देश जातं धनं धान्यं फलं वस्त्रं यत्क्रीतम् तदसावुरुजोत्तमः भुंक्ते भुक्तवानिति अत्र वैश्यार्थे उरुजः शब्दोवैदिकः ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीदित्यृचायांस्पष्टम् ॥

महंगे भाव में उस वैश्य ने जो अनेक देशों से धन, धान्य, फल और वस्त्रादि खरीदे थे उसका वह स्वयं भोग करता था ॥

कस्मिंश्चित्कालपर्य्याये मुद्राः काच प्रभानघाः ॥ २० ॥
वणिजा केन ते विप्र तद्वैश्योपायनीकृताः ॥

हे विप्र ! कस्मिंश्चित्कालपर्य्याये कस्मिंस्समये काचप्रभाः काच सदृशप्रभावन्तो नवा मुद्राः केन वणिजा वैश्येन तद्वैश्योपायनीकृता अर्थात्तस्मै वैश्यायोपहारे दत्ताः ॥

एक समय की बात है कि किसी वैश्य ने काच के सदृश चमकते हुवे नये मूंग उस वैश्य को भेंट किये ॥

ये जाताः शर्करावत्यां पावनायां ध्रुवं भुवि ॥ २१ ॥
सोपितान्निकटीकृत्य स्वहस्तेनैव पस्पृशे ॥
तेषां स्पर्शनमात्रेण प्राक्स्मृतिः समजायत ॥ २२ ॥

ये मुद्गाः पावनायां पवित्रायां शर्करावत्यां वालुकामय्यां भुवि ध्रुवं निश्चयेन जाताः उत्पन्नाबभूवुः अन्धोपिसवैश्यस्तान् मुद्गान्निकटीकृत्य स्वासन्नंनीत्वास्वहस्तेनैव पस्पृशे स्पर्शचकार तेषां मुद्गानां स्पर्शमात्रेण तस्य प्राक् (पूर्व जन्म समुद्भवा) स्मृतिः स्मरणं समजायत स्वकीय पूर्व जन्मनो ज्ञानमभूत् ॥ २२ ॥

जो मूंग उपहार में आये थे वे पवित्र बालुकामयी भूमि से उत्पन्न थे । उस अन्धे ने मूंगों की प्रशंसा सुनने के कारण उन मूंगों को अपने समीप मंगाकर निज हाथों से स्पर्श किया और स्पर्श करते ही उसको पूर्व जन्म का ज्ञान होगया ॥ २२ ॥

आलिलिंगसतान् मुद्गान् जातायां स्वस्मृतौ मुहुः ॥
महाप्रेमसमाविष्टोधुन्वन्मूर्धानमात्मनः ॥ २३ ॥

एवं स्वस्मृतौ जातायां सोन्धोवणिक् महाप्रेमसमाविष्टो मुहुरात्मनोमूर्द्धानं मस्तकं धुन्वन्कंपयन्तान्मुद्गानालिलिंग हृदा स्पर्शचकार ॥ २३ ॥

पूर्वजन्म की स्मृति हो जाने पर उस अन्धे वणिक् ने अत्यन्त प्रेम से गद्गद् हो अपने मस्तक को बारम्बार कंपता हुवा उन मूंगों को हृदय से लगा लिया ॥ २३ ॥

एवं विचेष्टमानं तं दृष्ट्वासर्वेसमीपगाः॥
ग्रहिलत्वंमन्यमाना आसन् सर्वे सुविस्मिताः॥ २४॥

एवं विचेष्टमानं विचेष्टयन्तं तमन्धं वणिजं दृष्ट्वा समीपगा स्सर्वे मनुष्याः तं ग्रहिलत्वं मन्यमानाः सुविस्मिता आश्चर्ययुक्ता आसन्॥ २४॥

ऐसे आचरण करते हुए उस अंधे वणिक को देख समीप के रहनेवाले सभी मनुष्य उसे विक्षिप्त समझ आश्चर्य में पड़ गये॥२४॥

पप्रच्छुस्ते विशांश्रेष्ठं किंत्वया क्रियतेत्विदम्॥
अपाकरं कृपणवत् कणानां स्पर्शनं हृदा॥ २५॥

ते समीपगा जनाः विशांश्रेष्ठं वणिग्वरं तमन्धं पप्रच्छुः यत् कृपणवद्दरिद्रवदिदम् कणानां मुद्राणां हृदा स्पर्शनं अपाकरं लज्जास्पदं कर्म त्वया किं क्रियते॥ २५॥

उन मनुष्यों ने उस वणिग्वर से पूछा कि दरिद्रियों की भांति इन क्षुद्रकणों को हृदय से लगाना तुम्हारे सदृश लक्ष्मीपात्रों के लिये लज्जा की बात है, यह क्या कर रहे हो॥ २५॥

एवं तेषां वचः श्रुत्वा प्रहस्य वणिजां पतिः॥
तान्प्रत्यूचे वचः श्लक्ष्णं संशयं नाशयन्निव॥ २६॥

एवं तेषां समीपवर्तिमनुष्याणां वचः वचनं श्रुत्वा वणिजां पतिस्सोन्धः प्रहस्य विहस्य तेषां संशयं नाशयन्निव श्लक्ष्णं स्निग्धं वचस्तान्प्रत्यूचे उक्तवान्॥ २६॥

इस प्रकार अपने आसपास बैठे हुए मनुष्यों के वचन सुन विहँसकर उस वणिक् ने उनके सन्देहों को मानो मिटाता हुआ सुमधुर वचन बोला॥ २६॥

श्रूयतां वचनं मेऽद्य ग्रहिलोनास्मिसत्तमाः ॥
यद्देशीया इमे मुग्दास्तद्देशे जन्म मेऽभवत् ॥ २७ ॥

हे सत्तमाः सत्पुरुषाः ! अद्य मे वचनं युष्माभिः श्रूयताम् ग्रहिलोनास्मि इमे मुग्दा यद्देशीयास्तद्देशे मे मम जन्माऽभवत् ॥२७॥

हे सत्तम सज्जन ! मेरी बात आप लोग सुनें, मैं पागल नहीं हूं जिस देश के ये मूंग हैं उसी देश में मेरा जन्म हुवा था ॥ २७ ॥

स्वादज्ञोस्म्यहमेतेषां भ्रामं भ्रामन्यतोऽशिताः ॥
क्षेत्रेषु परकीयेषु सस्यसम्पत्तिशालिषु ॥ २८ ॥

एते मुग्दाः सस्यसम्पत्तिशालिषु सस्यस्य सम्पत्त्या शालन्ते इति सस्यसम्पत्तिशालीनि क्षेत्राणि तेषु बहु सस्य समृद्धिशालिषु परकीयेषु क्षेत्रेषु यतो भ्रामन् भ्रामन् मया अशिता भक्षिताः अतोहमेतेषां मुग्दानां स्वादज्ञोस्मि ॥ २८ ॥

धान्य की सम्पत्ति से शोभित गृहस्थों के खेतों में घूमघूम कर मैंने इन मूंगों को खाया था इसलिये मैं इनके स्वादों को जानता हूं ॥ २८ ॥

पैरहं पुष्टिमगमं तेन मेऽतिप्रियाइमे ॥
पुनर्भवत्प्रत्ययार्थं वच्मि यत्तन्निशम्यताम् ॥ २९ ॥

येन हेतुना यैर्मुग्दैरहं पुष्टिमगमम् तेन कारणेन त इमे मे मम अतिप्रियाः सन्ति भवत्प्रत्ययार्थं विश्वासार्थं यत् पुनर्निकथयामि तन्निशम्यताम् ॥ २९ ॥

जिस हेतु इन मूंगों से मैं पाला पोसा गया था इस लिये ये मूंग मुझे अत्यन्त प्रिय हैं फिर भी आप लोगों के विश्वास के लिये जो मैं कहता हूं सो सुनिये ॥ २९ ॥

सागरोवालुकापूर्णोमहानस्ति महीतले ॥
उत्तंकस्याश्रमः पूर्वं यत्रासीद्धि महामुनेः ॥ ३० ॥

सर्वेभ्यः स्वनिकटस्थितान्मनुष्यान्यदकथयत् । तदेवस्कन्दोऽगस्त्यं कथयति । महीतले पृथ्वीतले वालुकापूर्णोमहान् सागरोऽस्ति यत्र पूर्वं उत्तंकस्य महामुनेराश्रमआसीत् ॥ ३० ॥

इस पृथ्वी तल में बालू से भरा हुवा एक बहुत बड़ा सागर था जहाँ पर महामुनि उत्तंक का आश्रम था ॥ ३० ॥

तद्देशेस्ति महातीर्थं वारुण्यां दिशि सत्तमाः ॥
कपिलायतनं नाम महापातकनाशनम् ॥ ३१ ॥

तद्देशे तत्प्रदेशे अत्रदेशशब्दस्तत्स्थानवाचकः । अर्थात् तत्स्थाने महर्षेरुत्तंकस्याश्रमाद्वारुण्यां वरुणस्यदिशा वारुणी तस्यां दिशि हे सत्तमाः सज्जनाः महापातक नाशनं कपिलायतनं नाम महातीर्थमासीत् ॥ ३१ ॥

हे सज्जन ! उस प्रदेश में उत्तंक मुनि के आश्रम से पश्चिम दिशा में महापापों के नाश करनेवाला कपिलायतन नाम का एक महातीर्थ है ॥३१

तृणानि चरतोऽरण्ये मृगीभिः सहितस्य मे ॥
जन्तुदंशोद्भवाः खर्जूः शिरः श्रुत्योरजायत ॥ ३३ ॥

अरण्ये वने मृगीभिः सहितस्य तृणानि चरतोमे शि
श्रुत्योः मस्तके कर्णयोश्च जन्तुदंशोद्भवा-जन्तुदंशनज्जा
खर्जूरजायत ॥ ३३ ॥

वन में मृगियों के साथ तृणों को चरता था तब मेरे शिर औ
कानों में किसी जन्तु के काटने से खाज उत्पन्न होगई ॥ ३३ ॥

ततः कण्डुनिवृत्त्यर्थं त्रिवक्रे वृक्षकोटरे ॥
वारं वारं शिरोघर्षं चकेतत्पशुबुद्धितः ॥ ३४ ॥

ततस्तदनन्तरं कण्डुनिवृत्त्यर्थं त्रिवक्रे वृक्षकोटरे वृक्षशाखे
पशुबुद्धितः अज्ञानात् वारं वारं शिरोघर्षं शिरस्संघर्षणं चक्रे ॥३४॥

तिसके बाद वृक्ष की त्रिवांक कोटर में अज्ञानवश खाज मिटाने
के हेतु वारवार मस्तक को रगड़ा ॥ ३४ ॥

ततः शिरोमे संसक्तं वक्रेतद्वृक्षकोटरे ॥
अत्यर्थं चकितोद्विग्नोवलान्निस्सारयन् शिरः ॥ ३५ ॥
श्वासोच्छ्वासकृतायासः सहसा पतितोभुवि ॥
ततश्शरीमत्यर्चं विलुठन् सन्नितस्ततः ॥ ३६ ॥

तस्तदनन्तरं वक्रे तद्वृक्षकोटरे तद्वृक्षीयवक्रशाखायां मे मम
शिरः संसक्तं संलग्नंजातं । तच्छिरो वलान्निस्सारयन्नत्यर्थमतिशयेन
चकित आकस्मिकघटनांप्राप्त उद्विग्नश्च एवं श्वासोच्छ्वासकृतायासः
उद्वेगवशात् श्वासोच्छ्वासश्चसंजातस्तस्मादायासः संजातस्तेन सहसा
भुविपतितः शिरोमे वक्रकोटरे लग्नमेवासीदतइतस्ततोविलुठन्
शरीरमत्यचम् शरीरत्यागमकरवम् ॥ ३५, ३६ ॥

ततः सर्वे विस्मितास्ते तत्पित्रे संन्यवेदयन् ॥
पिता सर्वान् संदिदेश सत्वरं गम्यतामिति ॥ ४३ ॥

ततस्तदनन्तरम्विस्मिता आश्चर्ययुक्तास्ते सर्वे तत्समीपवर्त्तिनो जनाः तत्पित्रे संन्यवेदयन् पिताच सत्वरं शीघ्रं गम्यतामिति सर्वान्संदिदेश आज्ञप्तवान् ॥ ४३ ॥

इसके बाद उस अन्धे वणिक के निकटवर्ती सभी मनुष्यों ने आश्चर्य माना और इन सब बातों को उसके पिता से कहा, पिता ने उसी समय सब को उस तीर्थ में जाने की आज्ञा दी ॥ ४३ ॥

पियासूंस्तानभिप्रेत्य पुनरन्धोऽब्रवीदिदम् ॥
निष्कास्य मच्छिरः सद्भिस्तस्माद्वृक्षस्य कोटरात् ॥४४॥
प्रक्षेप्यं शलिले शुद्धे तत्तीर्थीये महाद्भुते ॥
ततोयद्भाविततद्यूयमागता द्रक्ष्यथ द्रुतम् ॥ ४५ ॥

तान् पित्राज्ञप्तान् मनुष्यान् पियासूनभिप्रेत्यार्थादिमेऽवश्यं गमिष्यन्तीति बुद्ध्वान्धःपुनरप्रवीदयोवाच यत्तस्यवृक्षस्य कोटरान्मच्छिरोनिष्कास्य सद्भिस्साधुभिर्भवद्भिर्महाद्भुते तत्तीर्थीये शुद्धे शलिले जले प्रक्षिप्य ततोयद्भावि तदप्यागता यूयं द्रुतम् शीघ्रं द्रक्ष्यथ ॥ ४४, ४५ ॥

पिता से आज्ञा पाकर उस तीर्थ पर जाने के लिये उद्यत उन मनुष्यों को जान, उस अन्धे ने फिर कहा कि मेरा शिर जो अबतक उस वृक्ष के कोटर में फंसा हुवा है उसे निकाल कर उस महान् आश्चर्यकारी तीर्थ के शुद्ध जल में डाल देना तब जो होगा सो यहां आने पर आप लोग शीघ्र ही देखना ॥ ४४, ४५ ॥

ततस्ते तदनुज्ञाता द्रष्टास्तं देशमागमन ॥
तत्तीर्थपरमासाद्य वृक्षं वृक्षमतादन्...

मेरा शरीर पात होने के बाद जो हुआ सो कहता हूं सावधान होकर सुनिये ! उस तीर्थ में कुत्ते और शृगालों ने मेरे मृतशरीर को भक्षण किया ॥ ३९ ॥

जल प्रवाहैर्बहुलैः प्रावृट्काले घनाकुले ॥
प्रक्षिप्तानितदस्थीनि कापिलाख्ये सरोवरे ॥ ४० ॥

घनाकुले सर्वतोमेघावृते प्रावृट्काले वर्षर्तौ बहुलैर्जल प्रवाहै स्तदस्थीनि मम मृतदेहस्य कापिलाख्ये सरोवरे प्रक्षिप्तानि ॥ ४० ॥

सर्वतो मेघाच्छन्न वर्षाकाल में जब अति वेग से जल का प्रवाह चला तो मेरे शरीर की हड्डियां बहकर कपिल सरोवर में पड़ गईं ॥ ४० ॥

तत्तीर्थवरमाहात्म्याज्जातोहं वणिजांकुले ॥
धनिनां पुण्यकर्तॄणां महाभोगभुजांभुवि ॥ ४१ ॥

तत्तीर्थवरमाहात्म्यादहंभुवि महाभोगभुजां पुण्यकर्तॄणां धनीनां वणिजां कुले जात उत्पन्नः ॥ ४१ ॥

उस उत्तम तीर्थ के माहात्म्य से इस पृथ्वी में महाभोगशाली पुण्यकर्मा और धनी वैश्य के कुल में मेरा जन्म हुवा ॥ ४१ ॥

एतत्सर्वं समाख्यातं भवतां प्रीतयेऽनघाः ॥
मदुक्तंचेन्नमन्यध्वं गत्वा पश्यथ सत्वरम् ॥ ४२ ॥

हे अनघाः पुण्यजनाः एतत्सर्वं भवतां प्रीतये मया समाख्यातं चेन्मदुक्तं न मन्यध्वं तदा सत्वरं गत्वा पश्यथ ॥ ४२ ॥

ऐ पुण्यशाली निकटवर्त्तियो ! यह कथा आपलोगों की प्रसन्नता और प्रतीति के लिये मैं ने कही है यदि मेरे कहने पर विश्वास नहीं है तो इसी समय जाकर देख लीजिये कि मेरा शिर अबतक उस वृक्षकोटर में पड़ा है ॥ ४२ ॥

तत्तीर्थीय महाजले प्रविष्टमात्रे शिरसित्वंधोगृहे स्वतः स्वयमेव पयोजः कमलं तस्य पत्रे तद्वच्छिरी यस्य स कमलसदृश नेत्रः सद्यस्तत्कालंजातः ॥ ४८ ॥

उस तीर्थ के महोत्तम जल में उसका मस्तक पड़ते ही यहां अपने घर पर उस अन्धे के दोनों नेत्र अपनेआप उसी समय कमल के पत्रों के सदृश स्वच्छ होगए ॥ ४९ ॥

तत्र तत्परयतां नृणां रोमाचं समजायत ॥
वैश्योनिषेव्य तत्तीर्थं देहं त्यक्त्वादिवं ययौ ॥ ५० ॥

तत्र तत्परयतां नृणां मनुष्याणां रोमांचं समजायत। अर्थात्तीर्थभक्त्या सर्वे विह्वलावभूवुरिति भावः अन्धस्यपिता स वैश्यस्तदनन्तरं तत्तीर्थं निषेव्य तत्तीर्थे वासं कृत्वा तत्र देहं त्यक्त्वा दिवं स्वर्गं ययौ ॥ ५० ॥

इस महान आश्चर्यकारी दृश्य को देख सबको रोमांच होगया और उस अन्धे का पिता उसी समय गृह त्याग कर कपिल तीर्थ का वास करने चला गया। वहीं कुछ दिन तीर्थ सेवन कर स्वर्गधाम को गया ॥ ५० ॥

एतादृङ्निर्मलं तीर्थं सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥
महीपृष्ठे महाभाग! किञ्चिदेव भविष्यति ॥ ५१ ॥

हे महाभाग! महीपृष्ठे पृथिव्यां सद्यः प्रत्यय कारकम् एतादृङ्निर्मलं तीर्थं किञ्चिदेव भविष्यति ॥ ५१ ॥

हे महाभाग! इस पृथ्वी में तत्काल विश्वास करानेवाला ऐसा निर्मल तीर्थ विरलाही कोई होगा ॥ ५१ ॥

ततस्तदनन्तरं तदनुज्ञातास्तत्पित्रानुज्ञातास्ते हृष्टाः प्रसन्नमानसास्तं देशं आगमन् तत्तीर्थवरमासाद्य प्राप्य वृक्षं वृक्षं अलोकयन् ॥ ४६ ॥

तदनन्तर उसके पिता की आज्ञा पा प्रसन्न होकर वे मनुष्य उस देश में गये और उस तीर्थ के प्रत्येक वृक्ष में उस का शिर ढूंढने लगे ॥ ४६ ॥

कस्मिँश्चिद्वृक्षकुहरे मार्गयद्भिस्त्वरान्वितैः ॥
दृष्टं मार्गं शिरः शुष्कं सशृङ्गं हृष्टमानसाः ॥ ४७ ॥

गृहीत्वा तच्छिरश्शीघ्रं तस्य वैश्यस्य वाक्यतः ॥
प्राक्षिपन्तीर्थसलिले किंभवेदिति विस्मिताः ॥ ४८ ॥

त्वरान्वितैर्द्रुतंद्रुतं मार्गयद्भिरन्वेषयद्भिस्तैर्मनुजैः कस्मिंश्चिद्वृक्षकुहरे वृक्षकोटरे सशृङ्गं शुष्कं मार्गं शिरोमृगमस्तकं दृष्टम्। हृष्टमानसास्ते तस्य वैश्यस्य वाक्यतस्तद्वचनप्रमाणात्शीघ्रं तच्छिरोगृहीत्वा तीर्थसलिले प्राक्षिपन् ततः किंभवेदित्यवलोकनार्थं विस्मिता बभूवुः ॥ ४७, ४८ ॥

अति शीघ्रता से मृग मस्तक को ढूंढते हुए उन मनुष्यों ने किसी वृक्ष के कोटर (खोल) में सूखा हुआ मृग का शिर शृङ्ग सहित देखा और हर्षित हो उसे निकाल उस तीर्थ के जल में छोड़ दिया। इसके बाद क्या होता है यह देखने के लिये, विस्मित होगये ॥ ४७, ४८ ॥

शिरसि निक्षिप्तमात्रे तु तत्तीर्थस्य महाजले ॥
मृगः सर्वाङ्गसम्पन्नः सञ्जातो गृहे स्थितः ॥ ४९ ॥

तत्तीर्थाय महाजले प्रक्षिप्तमात्रे शिरसित्वंधोगृहे स्वतः स्वयमेव पयोजः कमलं तस्य पत्रं तद्वद्विशी यस्य स कमलसदृश नेत्रः सद्यस्तत्कालंजातः ॥ ४८ ॥

उस तीर्थ के महोत्तम जल में उसका मस्तक पड़ते ही यहां अपने घर पर उस अन्धे के दोनों नेत्र अपनेआप उसी समय कमल के पत्रों के सदृश स्वच्छ होगए ॥ ४९ ॥

तत्र तत्परयतां नृणां रोमाचं समजायत ॥
वैश्योनिषेव्य तत्तीर्थे देहं त्यक्त्वादिवं ययौ ॥ ५० ॥

तत्र तत्परयतां नृणां मनुष्याणां रोमांचं समजायत । अर्थात्तीर्थभक्त्या सर्वे विह्वलात्रभूवुरितिभावः अन्धस्यपिता स वैश्यस्तदनन्तरं तत्तीर्थं निषेव्य तत्तीर्थे वासं कृत्वा तत्र देहं त्यक्त्वा दिवं स्वर्गं ययौ ॥ ५० ॥

इस महान आश्चर्यकारी दृश्य को देख सबको रोमांच होगया और उस अन्धे का पिता उसी समय गृह त्याग कर कपिल तीर्थ का वास करने चला गया । वहीं कुछ दिन तीर्थ सेवन कर स्वर्गधाम को गया ॥ ५० ॥

एतादृङ्निर्मलं तीर्थं सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥
महीपृष्ठे महाभाग ! किञ्चिदेव भविष्यति ॥ ५१ ॥

हे महाभाग ! महीपृष्ठे पृथिव्यां सद्यः प्रत्यय कारकम् एतादृङ्निर्मलं तीर्थं किञ्चिदेव भविष्यति ॥ ५१ ॥

हे महाभाग ! इस पृथ्वी में तत्काल विश्वास करानेवाला ऐसा निर्मल तीर्थ विरलाही कोई होगा ॥ ५१ ॥

इतिहासमिमं श्रुत्वा तीर्थमाहात्म्यसूचकम् ॥
नरश्शुद्धेन मनसा ज्ञानचक्षुरवाप्नुयात् ॥ ५२ ॥

तीर्थमाहात्म्यसूचकमिममितिहासं शुद्धेन मनसा श्रुत्वा नरोज्ञानचक्षुरवाप्नुयात्प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ ५२ ॥

इस तीर्थ माहात्म-सूचक इतिहास को शुद्ध मन से श्रवण करने से मनुष्यों की ज्ञान दृष्टि होती है ॥ ५२ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे स्कन्दागस्त्यसम्वादे कपिलायतनमाहात्म्ये तीर्थवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ।



अथसप्तमाध्यायकथारम्भः।



(सूत उवाच)

एवमुक्त्वा पुनः प्राह स्कन्दः कुंभोद्भवंतदा ॥
शृणु तीर्थीयमाहात्म्यं मुने किंचिन्मयोदितम् ॥ १ ॥

(स्पष्टार्थः)

सूतजी शौनकादि ऋषियों से बोले कि इस प्रकार तीर्थ का हात्म्य कहकर स्कन्दजी अगस्त्य से बोले कि हे मुनि! मैं पुनः स तीर्थ का माहात्म्य कुछ कहता हूं, सुनो ॥ १ ॥

पुरा कदाचिदेतस्मिंस्तीर्थे स्नानं करिष्यताम् ॥
कार्तिकमासान्तघस्रेषु वर्षयस्त्रवरेषुवै ॥ २ ॥
समाजोऽभून्मनुष्याणां नाना देशनिवासिनाम् ॥
तस्मिन्समाजे बहवस्समायाता दिदृक्षवः ॥ ३ ॥
कौटुम्बिका भिक्षवश्च साधवोऽसाधवोजनाः ॥

नरकोलाहलाकीर्णे तस्मिन्काले तपोधन ॥ ४ ॥
इतस्ततोभ्रमन्तीहनराः कौतुकमाश्रिताः ॥

(स्पष्टार्थम्)

हे तपोधन ! इस प्रकार कई देशों से आयेहुए अनेक मनुष्यों के कोलाहल से परिपूरित इस समाज में केवल समाजदर्शक जितने लोग थे वे इधर उधर घूम रहे थे ॥

नाना पण्याः पदार्थास्तत्समाजे समुपागताः ॥ ५ ॥
वस्त्राणि वृषभा उष्ट्राः क्रयविक्रयकारणात् ॥
क्रेतारः केचिदायता विक्रेतारश्च केचन ॥ ६ ॥

(स्पष्टार्थम्)

उस मेले में कई प्रकार के पदार्थ, कपड़े, बैल, ऊंट बेंचने के निमित्त लाये गये थे और कई खरीदने और बेंचनेवाले भी आए थे ॥ ६ ॥

एवं सम्मिलिते लोके कोलाहलसमाकुले ॥
दर्शन्तीह पण्यानि विक्रेतारो नरान् नरान् ॥ ७ ॥

(स्पष्टम्)

इस प्रकार कोलाहलपूर्ण जन समाज में बेंचनेवाले अपने २ विक्रेयपदार्थ प्रत्येक ग्राहक को दिखाते और पसन्द कराते थे ॥ ७ ॥

सम्प्रैकः करभः कश्चिद्दुर्दान्तः पर्वतोपमः ॥
गुरुगर्जारवंकुर्वन् सर्वप्राणि भयंकरः ॥ ८ ॥

(स्पष्टम्)

उस मेले में एक ऊंट बिकने के लिये आया था जो महादुर्दान्त और सब प्राणियों के देखने में महाभयंकर एवं बड़े जोर से गर्जता हुआ था ॥ ८ ॥

तत्रैकदा स करभः क्रेतृभिः परिवारितः ॥
क्रेतारः सम्यगूचुस्ते सर्वांस्तानुष्ट्रनायकान् ॥ ९ ॥

(स्पष्टार्थम्)

उस मेले में जब एक बार उस ऊंट के चारों तरफ उसको खरीदनेवाले ग्राहक जमा हुए तो उन्होंने उसके मालिक से कहा ॥९॥

वयमेनं ग्रहीष्यामो यदि यूयं प्रदास्यथ ॥
परन्तु सकृदस्मभ्यं परिभ्राम्य प्रदर्श्यताम् ॥ १० ॥

(स्पष्टम्)

यदि तुम लोग इस ऊंट को बेचो तो हम लोग लेने को तैयार हैं परन्तु एक बार इस पर चढ़कर और थोड़ा चलाकर हम लोगों को दिखादो ॥ १० ॥

एवं तद्वचनं श्रुत्वा तत्र सामाजिको जनः ॥
न को प्येनं समारोढुं मनश्चक्रे भयान्वितः ॥ ११ ॥

(स्पष्टार्थः)

इस प्रकार ग्राहकों की बात सुनकर उस समाज के किसी मनुष्य ने भी भय के वश उस ऊंट पर चढ़ना स्वीकार नहीं किया ॥११॥

कस्य चिद्बाहुजातस्य तत्रासीद्गोलकस्थितः ॥
स आरोढुमनश्चक्रे तमुष्ट्रं मदगर्वितः ॥ १२ ॥

(स्पष्टम्)

उस समाज में एक किसी राजपूत का गोलकपुत्र था उसने जाति के अभिमान से मदगर्वित हो उस ऊंट पर चढ़ना स्वीकार करलिया ॥ १२ ॥

आगत्य स्वयमूंष तान् समाहूय क्रमेककं ॥
अहमेनं समारोक्ष्ये यदि यूयं वदस्यथ ॥ १३ ॥

(स्पष्टार्थम्)

यह गोलक समाज से निकल उन माहकों के सन्मुख आ कहने लगा कि यदि आपलोग कहैं तो मैं इस ऊंट पर चढ़ूंगा ॥ १३

ततः सर्वे‌ऽनुशासः समारोह यथेच्छया ॥
कुर्यस्मत्करणीयं त्वं प्रवीणोस्युष्ट्रारोहणे ॥ १४ ॥

(स्पष्टार्थः)

तब सब लोगों ने कहा कि खुशी से चढ़ो, तुम ऊंट पर सव करने में सुचतुर हो, चढ़ना तो हम लोग सर्दारों का कर्तव्य परन्तु यह हमारा काम तुम्हीं करदो ॥ १४ ॥

सावधानतया स्थेयमुष्ट्रोस्ति मदगर्वितः ।
निर्दोषास्मोवयं तत्र स्वेच्छयारोढुमिच्छसि ॥ १५ ॥

(स्पष्टार्थोयम्)

संभाल कर इस ऊंट पर बैठना यह ऊंट मदगर्वित है ह लोगों को दोष न देना तुम अपनी इच्छा से चढ़ना चाहते हो ॥ १५

भवद्भिर्नैव चिन्त्यं तन्मद्गृहे तादृशोष्ट्रकाः ॥
मया दृष्टाः समारूढाः कोयं स्यादुष्ट्रशावकः ॥ १६ ॥

(स्पष्टम्)

तुम लोग इसकी कुछ भी चिन्ता न करो मेरे घर ऐसे ऐसे ऊंट बहुत हैं जिनको मैंने देखा है और सवारी भी की है यह ऊंट का बच्चा क्या चीज है ॥ १५ ॥

एवं सस्मयमागत्य समारोढुं तमुष्ट्रकम् ॥
सँस्थाप्याकर्षयन् पृष्ठ आससाद स सत्वरः ॥ १७ ॥

(स्वार्थौ)

ऐसा कह और थोड़ा हंसता हुआ वह गोलक उस ऊंट के पास आया और चढ़ने के लिये ऊंट को खींच कर बैठाया तथा अति शीघ्रता से उसकी पीठ पर बैठ गया ॥ १७ ॥

बिभ्रद्वक्रोष्णीपबंधं युवाजातिमदोद्धतः ॥
सकौतुकैः सर्वजनैर्दृष्ट आरूढएवसः ॥ १८ ॥

सो युवा जातिमदोद्धतः वक्रोष्णीपबंधं विभ्रन् सकौतुकैः सर्वजनै रारूढ एव दृष्टः ॥ १८ ॥

जाति के मद से उद्धत वह युवा टेढ़ी पगड़ी को धारण किये हुवे जब ऊंट पर बैठ गया तब सब लोग कौतुक के साथ देखने लगे ॥ १८

अनुत्थापित एवोष्ट्रो धावने व्यवलोकितः ॥
दृष्ट्वालपुत्वमुष्ट्रस्य तद्वदेवोष्ट्रिणः पुनः ॥ १९ ॥
सर्वे सामाजिका लोका विस्मयं प्रतिपेदिरे ॥

अनुत्थापितएवोष्ट्रोधावने व्यवलोकितः उष्ट्रस्यलघुत्वं शिघ्रकारित्वं तद्वदेवोष्ट्रिणोपि शिघ्रारोहणदक्षतां दृष्ट्वा सर्वे सामाजिका लोका समाजस्था जना विस्मयमाश्चर्यं प्रतिपेदिरे प्रापुः ॥

अभी ऊंट को उठाया भी नहीं गया कि वह ऊंट दौड़ता हुआ दिखने लगा, इस तरह उस ऊंट की शिघ्रगति तथा ऊंट पर चढ़ने वाले की चतुरता देखकर मेले के सभी मनुष्य आश्चर्य में आगये ॥

पादाघातः शिरस्ताडः किंचित्कुञ्चितलोचनः ॥ २० ॥
मुखंरज्जुनिबंधनं रश्मिसंयमनान्वितः ॥
निघ्नन्पार्ष्णिप्रहाराभ्यां पश्चात्तं प्रहरन्मुहुः ॥ २१ ॥
वृक्षशाखाप्रणोदेनाप्युत्पात्युत्पात्यधावयत् ॥

पादाघातः गुरुत्वात्पादाघातः शिरस्ताडः उष्ट्रशिरस्ताड-भक्तपादः किंचित्कुञ्चितलोचनः अभिसंगतरज्जुहस्तलिप्तकरनाण मुष्टिगलसंस्थितं गृह्णन् रश्मिसंयमनान्वितः पार्ष्णिप्रहाराभ्यां कुक्षिं निघ्नन् ताडयन् वृक्ष शाखाप्रणोदेन पश्चात्तं मुहुः प्रहरन् आयुत्पा-त्युत्पात्याधावयत् ॥

उष्ट्रारोहण कला में निपुण युवा ने अपने पैरों का न्यास उत्तम रीति से किया था, अलग २ पैर रक्खे था, एवं कुछ ऊपर के तरफ मुख उठाकर ठीक ऊंट के मस्तक की ओर देख रहा था और अपने पैर की एड़ीयों से ऊंट के पेट में मारता हुवा एवं वृक्ष की डाली से पीछे की तरफ ऊंट को मारता हुवा नकेल को खींच २ कर अति वेग से दौड़ा रहा था ॥

स उष्ट्रं स्ववशीकर्तुमनश्चक्रे मदोद्धतः ॥ २२ ॥
तुदंति करभोप्येनं विपातयिषुरेवसः ॥

स मदोद्धतोयुवा उष्ट्रं स्ववशीकर्तुमनश्चक्रे। विपातयिषुरेव सः करभोप्येनं तुदंति ॥

उस मदोन्मत युवा ने ऊंट को अपने वश में करलेने का ठानलिया और वह ऊंट भी उसको अपनी पीठ से गिराने की इच्छा से उच्छालने लगा ॥

प्रशशंसुः केचनोष्ट्रं शशंसुः केचनोष्ट्रिणम् ॥ २३ ॥
"अहो ! एष महानुष्ट्री सम्यक्चालयतेप्ययम् ॥
दरपने करभः क्रूरः किंकरं पातयिष्यति ॥ २४ ॥

केचन उष्ट्रं प्रशशंसुः केचन उष्ट्रिणमुष्ट्रवाहं शशंसुः अहो! इति आश्चर्ये। एषमहान् उष्ट्री उष्ट्रचालकः। अयं सम्यक् उष्ट्रं चालयते अयं क्रूरः करभः स्वाधीनं किंकरं युवानं पातयिष्यति॥ २३, २४॥

कोई ऊंट की प्रशंसा करते थे कोई ऊंट के सवार की प्रशंसा करते थे और कहते थे कि अहा! यह महाचतुर उष्ट्रारोही है अच्छी तरह ऊंट को चला रहा है। दीख पड़ता है कि यह क्रूर करभ उस बेचारे को कहीं अवश्य पटकदेगा॥ २३, २४॥

शृण्वन्नेवं स्वकर्णाभ्यामुष्ट्रारोहणपाटवं॥
पुनः संचोदयामास समुष्ट्रंरोषयन् मदात्॥ २५॥

एवं स्वकर्णाभ्यामुष्ट्रारोहणपाटवं पाण्डित्यं जनैः कथ्यमानं शृण्वन् स युवा मदात् रोषयन् क्रुद्धयन्तमुष्ट्रम्पुनः संचोदमास प्रेरितवान्॥ २५॥

उस युवा ने इस तरह से अपनी प्रशंसा सुनते हुवे गर्व से उस ऊंट को उत्तेजित कर अति शीघ्र चलने को प्रेरित किया॥ २५॥

उष्ट्रोपि रोषमापन्नोविकृतां गतिमास्थितः॥
चतुर्भिश्चरणैरुच्चैरुत्पफाल पुनः पुनः॥ २६॥

उष्ट्रोपि उष्ट्रिणः कशाघातेन पार्ष्णिघातेन च रोषमापन्नो विकृतां कुटिलांगतिं गमनमास्थितः चतुर्भिश्चरणैः पुनः पुनर्वारं वारमुच्चैरुत्पफाल॥ २६॥

ऊंट भी छालियों के आघात और पैरों की ठोकर से क्रुद्ध होकर अपने चारों पैर उठा २ कर जोर से कूदने लगा॥ २६॥

स उष्ट्रवलसंक्षिप्त स्वपृष्ठासनसंस्थितिः ॥
च्युतरश्मिप्रतोदोऽभूत् भयश्वेतीकृताननः ॥ २७ ॥

उष्ट्रवलसंक्षिप्तस्वपृष्ठासनसंस्थितिः उष्ट्रवलेन संक्षिप्ता उत्क्षिप्ता स्वपृष्ठासनस्य संस्थितिः संस्थानं यस्य स उष्ट्रवलसंक्षिप्तस्वपृष्ठासनसंस्थितिः करभवलोत्क्षिप्तस्वपृष्ठास्तरणः स युवा भयश्वेतीकृताननः भयेन श्वेतीकृतमाननं यस्य स च्युतरश्मिप्रतोदः रश्मिश्च प्रतोदश्च तौ च्युतौ यस्य स तथाभूतोऽभूत् ॥ २७ ॥

ऊंट के वेग से पीठ का आसन ढीला होगया, युवक के हाथ से मोहरी गिरगई और उसका मुंह भय के मारे सफेद होगया ॥२७

उष्ट्रोपिदुष्टोरुष्टस्सन् एनं द्वित्रक्रमान्तरे ॥
सुदुष्टं पातयामास पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ २८ ॥

दुष्टउष्ट्रोपिरुष्टः क्रुद्धस्सन् पूर्ववैरं जन्मान्तरीयवैरमनुस्मरन् सुदुष्टं तं युवानं द्वित्रक्रमान्तरेद्वित्रपादविक्षेपे पातयामास ॥ २८ ॥

उस दुष्ट ऊंट ने क्रोधित होकर पहले के बैर को याद करते हुवे दो तीन ही उच्छाल में उस दुष्ट युवा को गिरा दिया ॥ २८ ॥

एवं तस्मिन्निपतिते कौतुकाकुलचेतसः ॥
परपीडानभिज्ञानाः सर्वे संजहसुर्मुदा ॥ २९ ॥

एवं तस्मिन् युनि निपतितेसति परपीडानभिज्ञाना परस्य स्वेतरस्य पीडा तस्याअनभिज्ञानं येषां ते अननुभूतपरव्यथाः कौतुकेन आकुलानि चेतांसि येषान्ते तथोक्ताः सर्वे मुदाहर्षेण संजहसुः ॥

इस तरह ऊंट की पीठ से उस युवा के गिरजानेपर दूसरों के दर्द को न जाननेवाले हास्यरस के प्रेमी केवल तमाशा देखनेवाले सब बड़े मोद से हंसने लगे ॥ २९ ॥

तं तदा विकली भूतं शकलीकृतकीकसं ॥
उद्धृत्य वेष्टयामासुस्तदीया येच केचन ॥ ३० ॥

तदा तस्मिन्काले विकलीभूतं व्याकुलीभूतं मर्म व्यथये ति तथा शकलीकृतकीकसं खण्डशोजातशिरसं तं युवानं तदीयास्तत्र येच केचन आसँस्ते उद्धृत्योत्थाप्य वेष्टयामासुः वस्त्रेणेतिशेषः ॥

जब वह युवा गिरकर मर्म वेदना से अचेत होगया तथा उसके सिर के टुकड़े टुकड़े होगये तब उसके आत्मीय जो लोग वहां थे उन्होंने उसको उठाकर कपड़े में लपेट लिया ॥ ३० ॥

वाच्यमानेपिनब्रूते मूर्छांतुमहतींगतः ॥
स क्षणंप्राप्य सुप्राणानुत्ससर्जायुषःक्षये ॥ ३१ ॥

महतीमकथनीयाम्मूर्छाङ्गतः स युवावाच्यमानोपि किंचित्स्वव्यथां कथयेत्युक्तोपि नब्रूते नावदत् क्षणंप्राप्य क्षणमात्रंस्थित्वा आयुषःक्षये आयुर्ह्रासे सुप्राणानुत्ससर्ज तत्याज ॥ ३१ ॥

महामूर्छा को प्राप्त वह युवा बुलाने से भी नहीं बोलता था, क्षणभर जीकर आयु के नष्ट होजाने पर अपने प्राणों को त्यागदिया ॥३१॥

क्रूरा यमभटास्तत्र मृतं तं नेतुमागताः ॥
बद्ध्वा स्वनागपाशैस्तु सद्यः संयमनीं ययुः ॥ ३२ ॥

क्रूरा निर्दयायमभटायमदूता स्तत्र तं मृतं मृतशरीरं नेतु मागताः पुनः स्वनागपाशैस्तद्विशेषैरज्जुरूपैस्तं मृतपुरुषशरीरं बद्ध्वा सद्यस्तत्कालं संयमनीं यमपुरीं ययुः ॥ ३२ ॥

वे निर्दयी यमदूत उसके मृत शरीर को अपनी नागफांस में बांध कर यमपुरी में लेगये ॥ ३२ ॥

गत्वा निवेदयामासुर्यमेनद्रविनन्दनम् ॥
वीरस्तमप्युनर्दृष्ट्वा चित्रगुप्तमचोदयत् ॥ ३३ ॥

ते यमदूताः स्तदा तदनन्तरं तत्र यमपुर्यां गत्वा रविनन्दनं यमराजं निवेदयामासुः [illegible] यमराजस्तु तद्दृष्ट्वा चित्रगुप्तं चोदयत् ॥ ३३ ॥

उन यमदूतों ने उस मृतात्मा को यमराज के सम्मुख उपस्थित किया यमराज ने उसके विषय में चित्रगुप्त से पूछा ॥ ३३ ॥

पश्यास्य पुण्यं पापानि किमनेन कृतं भुवि ॥
चित्रगुप्तस्तस्य लेखं दृष्ट्वा सम्यग्विचारतः ॥ ३४ ॥
यमं निवेदयामास तत्पकर्म शुभाशुभम् ॥

हे चित्रगुप्त ! अस्य पुण्यं पापानिच त्वंपश्य अनेन भुवि किं कृतम् । चित्र गुप्तस्तस्य लेखं विचारतोविचारपूर्वकं सम्यग्दृष्ट्वा तस्य शुभाशुभं कर्म यमं निवेदयामास ॥

यमराज ने चित्रगुप्त से कहा कि इसके पुण्य और पापों को देखो कि इसने मर्त्यलोक में क्या २ किया है ? चित्रगुप्त ने उसकी दिनचर्य्या विचारपूर्वक देखी और उसके शुभाशुभ कर्मों को यमराज से निवेदन किया ॥

कृतं नानेन सत्कर्म जन्मारभ्य प्रभो ! भुवि ॥ ३५ ॥
पापमेवकृतंनूनं सर्वदा मरणावधि ॥

हे प्रभो ! भुवि मर्त्यलोके अनेन जन्मारभ्य कदापि सत्कर्म नकृतं नूनं निश्चयेन मरणावधि पापमेव कृतम् ॥

हे प्रभु ! इसने मर्त्यलोकमें जाकर जन्म से मरण तक कभी सुकृत न किया, मरण पर्य्यन्त सर्वदा पाप ही पाप किये हैं ॥

एकं तु कृतमेतस्य मनः संशयतीव मे ॥ ३६ ॥
यस्माद्यं महापुण्यपांशुना गात्रगुंफितः ॥
कपिलक्षेत्रजेनाशु मृत्युमाप महेश्वर ॥ ३७ ॥

हे महेश्वर ! एतस्यतु एकं कृतं कार्यं मे मनः संशयति मन्देहयत्येव यस्मात् कारणात् कपिलक्षेत्रजेन कपिलक्षेत्रसंभूतेन महापुण्यपांशुना अतिपवित्ररजसा गात्रगुंफितः गुंफितशरीरः आशु शीघ्रं मृत्युमाप ॥ ३६, ३७ ॥

हे महेश्वर ! यह कपिलक्षेत्र की धूल से धूसरित होकर मृत्यु को प्राप्त हुआ है यही इसका एक कृत्य मेरे मन में सन्देहयुक्त प्रतीत होता है ॥ ३६, ३७ ॥

इति वाक्यं यमः श्रुत्वा कंपयानो निजं शिरः ॥
प्रोवाच वचनं सर्वान्मुक्तोयं नात्र संशयः ॥ ३८ ॥

यमोयमराज इति चित्रगुप्त वाक्यं श्रुत्वा निजं शिरः कंपयानः आजन्मकृतपापबन्धनेनायं मुक्तो नात्र संशय इति वाक्यं सर्वान्दूतान्प्रोवाच ॥ ३८ ॥

चित्रगुप्त का यह वाक्य सुनकर अपना मस्तक हिलाते हुए यमदेव ने अपने सभी दूतों से कहा कि यह मुक्त हो गया अपने आजन्म के किये हुए पापों से रहित हो गया इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ३८ ॥

भोदूताः ! भवतां हस्तस्पर्शादस्तु विगतोऽधुना ॥
नायं मारयितुं शक्यो भवद्भिर्यमदूतकाः ॥ ३९ ॥

(स्पष्टम्)

हे दूतगण ! अब तुम लोगों के हाथों का स्पर्श हुआ, तुम लोग इसको कभी नहीं मार सकते ॥ ३९ ॥

तथा रजांसि त्रीण्येव पवित्राणीह भूतले ॥
एकं व्रजरजः पुण्यं चित्रकूटरजस्तथा ॥ ४० ॥
कपिलालयजं तद्वत्पवित्रं सर्वमुक्तिदम् ॥

इह भूतले त्रीण्येवरजांसि तथापवित्राणि एकं व्रजरजः पुण्यं तथा चित्रकूटरजः पवित्रं तद्वत्सर्वमुक्तिदङ्कपिलालयजंरजः पवित्रमस्ति ॥

इस पृथ्वी में तीन ही रज पवित्र हैं एक तो व्रजरज, दूसरा चित्रकूट का रज और तीसरा सब को मुक्ति देनेवाला कपिलालय का रज ॥

तस्मात्पुण्यतरेदेशे पुरे पुण्यकुलेतथा ॥ ४१ ॥
पुण्ये गृहे पुण्यवति जन्मैतस्यप्रदीयताम् ॥

(स्पष्टम्)

इस कारण से पवित्र देश, पवित्र ग्राम, पवित्र कुल और पवित्र घर में इसका जन्म दो ॥

एवमुक्ते यमेनाशु सदासौगतपातकः ॥ ४२ ॥
विदर्भदेशेपूत्पन्नः कुंडिने नगरे वरे ॥
तथा पुण्यवताम्वंशे वणिजां पुण्यपूजिते ॥ ४३ ॥
महाशीलगृहेजातः सुशीलागर्भसंभवः ॥
चारुशील इतिख्यातोऽभवत् सार्थाभिधानवान् ॥ ४४ ॥

आशु शीघ्रं यमेनैवमुक्तेसति सदा सर्वस्मिन्काले गतपातको विगतपापोऽसौ विदर्भदेशेषु वरे उत्तमे कुण्डिने नगरे तथा पुण्यवतां पवित्राणां वणिजां वैश्यानां पुण्यपूजिते महापवित्र वंशे महाशीलनाम्नोवैश्यस्य गृहे सुशीलाया स्तत्पत्न्या गर्भसंभवः चारुशील इतिख्यातः प्रसिद्धनामा सार्थाभिधानवान् नामानुरूपः उत्पन्नोऽभवत् ॥ ४३, ४४ ॥

यमराज के कहने पर उसी समय निष्पाप होकर वह मृत युवा विदर्भ देश के पवित्र कुण्डिन नगर में और पवित्र वैश्य वंश में महाशील नामक वैश्य के गृह में उसकी स्त्री सुशीला के गर्भ से उत्पन्न हुआ जिसका नाम चारुशील रखागया और नामानुरूप उसके गुण हुए॥

दयावान् दानशीलश्च सुन्दरोवृद्धसेवकः॥
पिता विवाहयामास सारशीलांविशःसुताम्॥ ४५॥

स चारुशीलनामा वैश्यसुतोदयावान् दानशीलः उदार प्रकृतिकः सुन्दरोरूपसम्पत्तिसम्पन्नोवृद्धसेवकश्चसंजातः तस्य पिता सारशीलां सारशीलानाम्नींविशः सुतां वणिकन्यां विवाहयामास॥ ४५॥

वह चारुशील नाम का वैश्यपुत्र दयावान दानशील सुन्दर और वृद्धों की सेवा करने वाला हुवा। उसके पिता ने उसका विवाह सारशीला नाम की एक वैश्य कन्या से करदिया॥

सापि पतिव्रताह्यासीत्तस्य पुण्यप्रभावतः॥
यदा सौ यौवनावस्थः संजातो भुवि भूरिदः॥ ४६॥

(स्पष्टम्)

वह भी सारशीला अपने पति के पुण्य प्रभाव से पतिव्रता हुई। जबवह चारुशील यौवनावस्था को प्राप्तहुवा तो बडानामी और दानीहुआ॥

तदास्य बुद्धिरुत्पन्ना धनस्योत्पादने मुने॥
विदर्भदेशजं वस्तु क्रीत्वा स वणिजां पतिः॥ ४७॥
विक्रयार्थंग...

(स्पष्टम्)

तब धनोपार्जन करने की उसकी इच्छा हुई इसलिये विदर्भ देश में जो व्यापारिक वस्तुएं थी उन को खरीद पुष्कल धन साथ में ले बेचने के लिये वह सिन्धुदेश में गया ॥

तद्वस्तु तत्र विक्रीय तज्जं वस्तु गृहीतवान् ॥ ४८ ॥
तद्वस्तुनः स्वदेशेषु विक्रयं कृतवान् पुनः ॥
एवं गतागतैस्तेन संलब्धं बहुलं धनम् ॥ ४९ ॥

तद्विदर्भदेशजम्वस्तु तत्र सिन्धुदेशे विक्रीय प्राप्तमूल्येन निजधनेनच तज्जं सिन्धुदेशजं वस्तु गृहीतवान् वस्तुनः स्वदेशेषु आगत्य विक्रीतवान् एवं गतागतैर्व्यापारकर्म्मणा गमनागमनैस्तेन वणिजा बहुलं धनं संलब्धम् ॥ ४८, ४९ ॥

सिन्धदेश में अपने देश की व्यापारिक वस्तुओं को बेचकर जो धन प्राप्त किया उससे, और अपने साथ में जो धन लेगया था उससे सिन्धुदेश की व्यापारिक वस्तुओं को जिनकी अपने देश में आवश्यक्ता थी संग्रह किया और उनको अपने देश में आकर बेचा एवं बारम्बार आने जाने और व्यापार करने से अल्प काल में ही प्रचुर धन का उपार्जन कर लिया ॥ ४८, ४९ ॥

गच्छतागच्छता तेन पूर्वसँस्कार योगतः ॥
कपिलायतने पुण्ये निवासाः सततंकृताः ॥ ५० ॥

एवं गच्छतागच्छता तेन व्यापारिणा स्वकीय पूर्वसँस्कार योगतः सततं प्रति यात्रायां पुण्ये पवित्रे कपिलायतने कपिलक्षेत्रे ... मार्गविश्रान्तियः कृताः ॥

इस प्रकार व्यापार के काम में आते जाते अपने पूर्वजन्म के
संस्कार से प्रत्येक यात्रा में वह पवित्र कपिल मुनि के आश्रम में ही
वास किया करता था ॥ ५० ॥

तत्र स्नातंचदत्तंच सदानिवसतासता ॥
श्रद्धायुक्तेनमनसा जातं पुण्यमनन्तकं ॥ ५१ ॥

तत्र कपिलायतने सदा निवसता वासं कृतवता सता तेन
व्यापारिणा श्रद्धायुक्तेन मनसा शुद्धचेतसा स्नानंकृतं दत्तं
दानंचकृतं तेनानन्तकमसंख्याकं पुण्यं जातम् ॥ ५१ ॥

उस कपिलायतन तीर्थ में सदा निवास करताहुआ वह व्यापारी
श्रद्धा के साथ स्नान और दान भी किया करता था जिसका अनन्त
पुण्य उसको प्राप्त हुआ ॥ ५१ ॥

गच्छतोवागच्छतोवा तीर्थे निवसतः कदा ॥
युक्तस्य भ्रातृभिः पुत्रैर्विप्रैर्विद्वद्भिस्तथा ॥ ५२ ॥
शीतवातनिमित्तेन रोगोजातः कलेवरे ॥
दिवसे दिवसे तस्य रोगः समधिकोऽभवत् ॥ ५३ ॥

सर्वैरयस्तु पूर्वसंस्कारत इहजन्मनिच सदा कपिलायतन
निवासाद्यातिसंस्कारवान्विचारवांश्च बभूव ततः परिणतवयसि
व्यापारे स्वपुत्रादितपुत्रभ्रातृभिस्तथान्यैर्विद्वद्भिस्सहव्यापारार्थं परदेश
गमनागमने प्रवृत्तोऽभवत् एवं परिवारावृतस्य तस्यवणिजः गच्छत
आगच्छतो वा कदा कस्मिन्नपिकाले कपिलायतने तीर्थे निवसतः
निवासंकुर्वतस्तस्य कलेवरे शीतवातनिमित्तेन हेतुना रोगस्संजातः
तस्य [illegible] समधिकोऽभवत् ॥ ५२, ५३ ॥

यह वैश्य पूर्वजन्म के संस्कार से तथा इस जन्म में व्यापार के अर्थ वारवार विदेश जाने आने के समय उस पवित्रतीर्थ में निवास करने से अत्यन्त उज्ज्वल संस्कार और विचार का होगया था इसलिये अपनी वृद्धावस्था में सदा के भांति केवल दस पांच नौकर और वस्तुरक्षक तथा क्रय-विक्रय का हिसाब-किताब रखनेवालेही के साथ ,अब नहीं आता जाता था किन्तु इस अवस्था में आवश्यकीय भृत्यों के अतिरिक्त अपने गुरु पुरोहित स्त्री पुत्र भाई इत्यादि सब कुटुम्बियों के साथ व्यापार करने के लिये आने जाने लगा। एवं सदा आने और जाने तथा उस तीर्थ में निवास करने की दशा में किसी समय शर्दी और वायु के विकार से उसके शरीर में रोग उत्पन्न हुआ और उसकी निवृत्ति के अनेक प्रयत्न करने पर भी रोग दिन दिन बढ़ता ही गया ॥ ५२, ५३ ॥

ततः संचिन्त्य मनसि विवेकी स वणिक्पतिः ॥
चक्रे बहूनि दानानि शास्त्रोक्तानि विधानतः ॥ ५४ ॥

(स्पष्टम्)

तदनन्तर उस विचारवान् वणिक्पति ने अपनी भावी दशा को अपने मन में विचार कर अपने साथ के पण्डितों के शास्त्रोक्त उपदेशानुसार अनेक दान पुण्य उस तीर्थ में किये ॥ ५४ ॥

पूर्वं ताम्रतुलां कृत्वा कृत्वा रूप्यतुलां ततः ॥
ततस्स्वर्णतुलां चक्रे श्रीविष्णुप्रीतये वणिक् ॥ ५५ ॥

(स्पष्टम्)

पहिले ताम्रमय तुलादान, तदनन्तर चान्दी का तुलादान, और फिर सोने का तुलादान किया। वह वैश्य जितना दान करता था सो कामना-विहीन और श्रीविष्णुभगवान् के प्रीत्यर्थ करता था ॥ ५५ ॥

तथा चान्यानि दानानि श्रद्धाभक्तियुतोमुदा ॥
चक्रेऽसौ वणिजां श्रेष्ठो विद्वद्ब्राह्मणवाक्यतः ॥५६॥

(स्पष्टम्)

एवं उस श्रेष्ठी ने अपने विद्वानों के आदेशानुसार श्रद्धा और भक्ति से युक्त होकर प्रसन्नता के साथ और भी अनेक दानों को किया ॥५६॥

पुनरन्त्येष्टिदानानि चक्रे साङ्ख्यमुपाश्रितम् ॥
एवं सर्वविधिङ्कृत्वा मनसाध्यानमास्थितः ॥ ५७ ॥

पुनरन्त्येष्टिदानानि मरणानन्तरं पुत्रभ्रात्रादिविहित दानानि च स्वयं चक्रे एवं सर्वविधिङ्कृत्वा साख्यमुपाश्रितम् साङ्ख्य-वर्णितमानसध्यानं मानसिकदेवार्चनमास्थितः ॥ ५७ ॥

फिर अन्त्येष्टि दान जो मृत्यु के पश्चात् पुत्र भ्रात्रादि विहित दान हैं वह भी कर लिया इस प्रकार सब विधि करने के अनन्तर सांख्यशास्त्रानुकूल मानसध्यान में निमग्न हो एकाग्र चित्त करके बैठ गया ॥ ५७ ॥

तस्यत्तेत्रस्य योदेवस्तं देवंशरणङ्गतः ॥
एवं प्रवर्तमानस्य वणिजस्तस्य सत्तमः ॥ ५८ ॥
बुद्धिः कापिसमुत्पन्ना नित्यानित्यविवेकिनी ॥
शरण्यस्य प्रसादेन सांख्याचार्यस्य सत्तमा ॥ ५९ ॥

(स्पष्टम्)

हे अगस्त्य ! इस प्रकार ध्यानावस्थित हो उस तीर्थ के देवता श्रीकपिलाचार्य का शरण्य हुआ और सतत ध्यान यज्ञ करने से जब शुद्ध अन्तःकरण होगया तो श्रीकपिलमुनि की प्रसन्नता से नित्यानित्य विवेचिनी सद्बुद्धि उत्पन्न हुई अर्थात् ब्रह्मज्ञान हो गया ॥ ५८, ५९ ॥

वह वैश्य पूर्वजन्म के संस्कार से तथा इस जन्म में व्यापार के अर्थ वारवार विदेश जाने आने के समय उस पवित्रतीर्थ में निवास करने से अत्यन्त उज्ज्वल संस्कार और विचार का होगया था इसलिये अपनी वृद्धावस्था में सदा के भांति केवल दस पांच नौकर और वस्तुरक्षक तथा क्रय-विक्रय का हिसाब-किताब रखनेवालोंही के साथ अब नहीं आता जाता था किन्तु इस अवस्था में आवश्यकीय भृत्यों के अतिरिक्त अपने गुरु पुरोहित स्त्री पुत्र भाई इत्यादि सब कुटुम्बियों के साथ व्यापार करने के लिये आने जाने लगा। एवं सदा आने और जाने तथा उस तीर्थ में निवास करने की दशा में किसी समय शर्दी और वायु के विकार से उसके शरीर में रोग उत्पन्न हुआ और उसकी निवृत्ति के अनेक प्रयत्न करने पर भी रोग दिन दिन बढ़ता ही गया॥ ५२, ५३॥

ततः संचित्य मनसि विवेकी स वणिक्पतिः॥
चक्रे बहूनि दानानि शास्त्रोक्तानि विधानतः॥ ५४॥

(स्पष्टम्)

तदनन्तर उस विचारवान् वणिक्पति ने अपनी भावी दशा को अपने मन में विचार कर अपने साथ के पण्डितों के शास्त्रोक्त उपदेशानुसार अनेक दान पुण्य उस तीर्थ में किये॥ ५४॥

पूर्वं ताम्रतुलां कृत्वा कृत्वा रूप्यतुलां ततः॥
ततस्स्वर्णतुलां चक्रे श्रीविष्णुप्रीतये वणिक्॥ ५५॥

(स्पष्टम्)

पहिले ताम्रमय तुलादान, तदनन्तर चान्दी का तुलादान, और फिर सोने का तुलादान किया। वह वैश्य जितना दान करता था सो कामना-विहीन और श्रीविष्णुभगवान् के प्रीत्यर्थ करता था॥ ५५॥

तथा धान्यानि दानानि श्रद्धाभक्तियुतोमुदा ॥
चक्रेऽसौ वणिजां श्रेष्ठो विद्वद्ब्राह्मणवाक्यतः ॥५६॥

(स्पष्टम्)

एवं उस श्रेष्ठी ने अपने विद्वानों के आदेशानुसार श्रद्धा और भक्ति से युक्त होकर प्रसन्नता के साथ और भी अनेक दानों को किया ॥५६॥

पुनरन्त्येष्टिदानानि चक्रे साङ्ख्यमुपाश्रितम् ॥
एवं सर्वविधिङ्कृत्वा मनसाध्यानमास्थितः ॥ ५७ ॥

पुनरन्त्येष्टिदानानि मरणानन्तरं पुत्रभ्रात्रादिविहित दानानि च स्वयं चक्रे एवं सर्वविधिङ्कृत्वा साङ्ख्यमुपाश्रितम् साङ्ख्य-वर्णितमानसध्यानं मानसिकदेवार्चनमास्थितः ॥ ५७ ॥

फिर अन्त्येष्टि दान जो मृत्यु के पश्चात् पुत्र भ्रात्रादि विहित दान हैं वह भी कर लिया इस प्रकार सब विधि करने के अनन्तर सांख्यशास्त्रानुकूल मानसध्यान में निमग्न हो एकाग्र चित्त करके बैठ गया ॥ ५७ ॥

तस्यत्वेत्रस्य योदेवस्तं देवंशरणङ्गतः ॥
एवं प्रवर्त्तमानस्य वणिजस्तस्य सत्तमः ॥ ५८ ॥
बुद्धिः कापिसमुत्पन्ना नित्यानित्यविवेकिनी ॥
शरण्यस्य प्रसादेन सांख्याचार्यस्य सत्तमा ॥ ५९ ॥

(स्पष्टम्)

हे अगस्त्य ! इस प्रकार ध्यानावस्थित हो उस तीर्थ के देवता श्रीकपिलाचार्य का शरण्य हुआ और सतत ध्यान यज्ञ करने से जब शुद्ध अन्तःकरण होगया तो श्रीकपिलमुनि की प्रसन्नता से नित्यानित्य विवेचिनी सद्बुद्धि उत्पन्न हुई अर्थात् ब्रह्मज्ञान हो गया ॥ ५८, ५९ ॥

वह वैश्य पूर्वजन्म के संस्कार से तथा इस जन्म में व्यापार के अर्थ वारवार विदेश जाने आने के समय उस पवित्रतीर्थ में निवास करने से अत्यन्त उज्ज्वल संस्कार और विचार का होगया था इसलिये अपनी वृद्धावस्था में सदा के भांति केवल दस पांच नौकर और वस्तुरक्षक तथा क्रय-विक्रय का हिसाब-किताब रखनेवाले के साथ अब नहीं आता जाता था किन्तु इस अवस्था में व्यापार-कीय भृत्यों के अतिरिक्त अपने गुरु पुरोहित स्त्री पुत्र भाई इत्यादि सब कुटुम्बियों के साथ व्यापार करने के लिये आने जाने लगा। इस प्रकार आने और जाने तथा उस तीर्थ में निवास करने की दशा में किसी समय शर्दी और वायु के विकार से उसके शरीर में रोग उत्पन्न हुआ और उसकी निवृत्ति के अनेक प्रयत्न करने पर भी रोग दिन दिन बढ़ता ही गया ॥ ५२, ५३ ॥

ततः संचिन्त्य मनसि विवेकी स वणिक्पतिः ॥
चक्रे बहूनि दानानि शास्त्रोक्तानि विधानतः ॥ ५४ ॥

(स्पष्टम्)

तदनन्तर उस विचारवान् वणिक्पति ने अपनी भावी दशा को अपने मन में विचार कर अपने साथ के पण्डितों के शुभ उपदेशानुसार अनेक दान पुण्य उस तीर्थ में किये ॥ ५४ ॥

पूर्वं ताम्रतुलां कृत्वा कृत्वा रूप्यतुलां ततः ॥
ततस्स्वर्णतुलां चक्रे श्रीविष्णुप्रीणने वणिक् ॥ ५५ ॥

(स्पष्टम्)

पहिले तांबा का तुलादान, तदनन्तर चांदी का तुलादान, और [illegible] का तुलादान किया। वह वैश्य [illegible] करता था [illegible] श्रीविष्णुभगवान् के प्रसन्न करने [illegible] ॥ ५५ ॥

एवं तदासौ पापात्मा तत्तीर्थस्य प्रसादतः ॥
प्राप दुःप्राप्यमन्यैर्यत्तद्विष्णोः परमंपदम् ॥ ६२ ॥

एवं तदा तस्मिन्समये तत्तीर्थस्य प्रसादतो महत्त्वतोऽसौ पापात्मा अन्यैर्योगिभिस्तपस्विभिर्दुःप्राप्यं दुर्लभंयद्विष्णोः परमं पदन्तत्प्राप ॥ ६२ ॥

इस प्रकार उस तीर्थ के प्रसाद से उस पापात्मा ने, योगी और तपस्वि को अलभ्य जो विष्णुभगवान् का परम धाम है उसको पाया ॥६२

स सखा चारुशीलोऽभूत्पुण्यशीलसुशीलयोः ॥
रमतेद्यापि वैकुंठे लोके दिव्यप्रभामये ॥ ६३ ॥

अस्मिञ्श्लोके वैकुण्ठलोके तस्य समवस्थानम्वर्णयति । स चारुशीलः पुण्यशीलसुशीलयोः विष्णुपार्षदयोः सखा मित्रमभूद्यो ऽद्यापि दिव्यप्रभामये वैकुंठे रमते ॥ ६३ ॥

वह बैकुंठधाम में जाकर भगवान के पार्षद पुण्यशील और सुशील का मित्र होगया जो आजतक वैकुंठ में विहार कर रहे हैं ॥ ६३ ॥

इत्थंभूतानुभावोयं दृष्टोदिव्यप्रभाववान् ॥
यस्य माहात्म्यकथने शक्तोनाहं न मे पिता ॥ ६४ ॥

इत्थंभूतानुभावः इत्थंभूतप्रभावः । अनुभावः प्रभावेचेत्यमरः । दिव्यप्रभाववान् दिव्यप्रतापवान् अयं तीर्थराजोदृष्टः दृष्टिविषयंगतः । यस्य माहात्म्य कथने नाहं शक्तोनमेपिता शक्तः ॥ ६४ ॥

(अत्रस्कन्दस्तीर्थमाहात्म्यस्यपरां काष्ठांजनयति)

---

(१) पुण्यशील और सुशील विष्णु भगवान् के दोनों पार्षद थे जो निरन्तर भगवान् की सेवा में रहते थे।

तस्याःप्रादुर्भवादेवजीवन्मुक्तोऽभयत्तदा ॥
पश्यतां सर्वबन्धूनां ततः स्वदेहमत्यजत् ॥ ६० ॥

तस्याः ज्ञानवत्या बुद्ध्या प्रादुर्भवादुदयादेव स जीवन्मुक्तोऽभवत् । ब्रह्मसाक्षात्कारेणजीवन्मुक्तोभवतीति सांख्योक्तेः । तदन्तरमिदंपांचभौतिकमनित्यं शरीरं रक्षतु जहातुवेतिब्रह्मज्ञानिनामिच्छाधीनमस्त्यतः स इदमनित्यं देहं स्वस्त्रीपुत्रमात्रादि सर्वबन्धूनां पश्यतामेवात्यजदर्थात्परलोकं जगाम ॥ ६० ॥

-उस ज्ञानबुद्धि के उत्पन्न होतेही वह वैश्य जीवनमुक्त हो गया। क्योंकि ब्रह्म साक्षात्कार जिसको हो जाता है वह जीवन्मुक्त कहाही जाता है, यह सांख्य का मत है । अब रहा मरना जीना सो ब्रह्मज्ञानियों की इच्छा पर है वह चाहे इस अनित्य पांचभौतिक शरीर को रक्खे या परित्याग कर दे, उत्तम ज्ञानी बहुधा त्यागही करते हैं इसलिए अपने बन्धु बान्धव स्त्री पुत्रादि के देखते देखते उसने अपने इस अनित्य शरीर को त्याग दिया ॥ ६० ॥

लोकं वैकुण्ठमगमद्भास्वरं तमसः परम् ॥
यद्गत्वा न निवर्तन्ते शान्ताः संन्यासिनोमलाः ॥६१॥

शरीरत्यागानन्तरं तमसोन्धकारस्य परम् पारं भास्वरं देदीप्यमानं लक्ष्मीपतेर्निवासस्थानम्वैकुण्ठलोकमगमत् यद्गत्वा शान्ताः रागद्वेषादिरहिताः अमन्तनाः शुद्धाः सन्यासिनो विरक्ताः न निवर्तन्ते जननमरणाभ्यां रहिता भवन्ति ॥ ६१ ॥

इस स्थूल शरीर को त्याग करने के अनन्तर सूक्ष्म शरीर को धारण कर इस सांसारिक मोहान्धकार से अलग हो कोटि सूर्य के समान चमकता हुआ श्रीलक्ष्मीपति के निवासस्थान (वैकुंठधाम) को चला गया । जहां जाकर शान्त और विशुद्ध सन्यासी जन फिर नहीं आते ॥६१

एवं तदासौ पापात्मा तत्तीर्थस्य प्रसादतः ॥
माप दुःप्राप्यमन्यैर्यत्तद्विष्णोः परमंपदम् ॥ ६२ ॥

एवं तदा तस्मिन्समये तत्तीर्थस्य प्रसादतो महत्वतोऽसौ पापात्मा अन्यैर्योगिभिस्तपस्विभिर्दुःप्राप्यं दुर्लभंयद्विष्णोः परमं पदन्तत्प्राप ॥ ६२ ॥

इस प्रकार उस तीर्थ के प्रसाद से उस पापात्मा ने, योगी और तपस्वि को अलभ्य जो विष्णुभगवान् का परम धाम है उसको पाया ॥६२

स सखा चारुशीलोऽभूत्पुण्यशीलसुशीलयोः ॥
रमतेद्यापि वैकुंठे लोके दिव्यप्रभामये ॥ ६३ ॥

अस्मिंश्श्लोके वैकुण्ठलोके तस्य समवस्थानम्वर्णयति । स चारुशीलः पुण्यशीलसुशीलयोः विष्णुपार्षदयोः सखा मित्रमभूद्यो ऽद्यापि दिव्यप्रभामये वैकुंठे रमते ॥ ६३ ॥

वह वैकुंठधाम में जाकर भगवान के पार्षद पुण्यशील और सुशील का मित्र होगया जो आजतक वैकुंठ में बिहार कर रहे हैं ॥ ६३ ॥

इत्थंभूतानुभावोयं दृष्टोदिव्यप्रभाववान् ॥
यस्य माहात्म्यकथने शक्तोनाहं न मे पिता ॥ ६४ ॥

इत्थंभूतानुभावः इत्थंभूतप्रभावः । अनुभावः प्रभावेचेत्यमरः । दिव्यप्रभाववान् दिव्यप्रतापवान् अयं तीर्थराजोदृष्टः दृष्टिविषयंगतः । यस्य माहात्म्य कथने नाहं शक्तोनमेपिता शक्तः ॥ ६४ ॥

(अथस्कन्दस्तीर्थमाहात्म्यस्यपरां कष्ठांजनयति)

(१) पुण्यशील और सुशील विष्णु भगवान् के दोनों पार्षद थे जो निरन्तर भगवान् की सेवा में रहते थे।

इस तरह के प्रभाव वाला स्वर्गीय प्रताप से युक्त यहाँ तीर्थराज देखागया है जिसका माहात्म्य वर्णन करने में न मैं समर्थ हूं न मेरे पिता शिवजी समर्थ हैं ॥ ६४ ॥

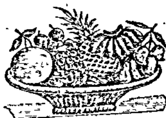
इतिहासमिमं पुण्यं शृणुयाच्छ्रावयेच्च यः ॥
स्वस्वदेहांतमासाद्य वैकुंठे यास्यति ध्रुवम् ॥ ६५ ॥

(अथमध्यायोपसंहारश्च)

इमं पुण्यं पवित्रमितिहासं यःशृणुयात् यश्चश्रावयेत् । स स्वस्वदेहान्तमासाद्यायावत् पूर्णायुः पर्य्यन्तंभोगंभुक्त्वान्ते ध्रुवं वैकुंठं यास्यति गमिष्यति । वारम्वारं श्रवणाच्छ्रावणाचप्राप्तश्रद्धयां तत्तीर्थसेवनेन मुक्तिर्भविष्यतीति तात्पर्य्यम् ॥ ६५ ॥

इस पवित्र इतिहास को जो सुनेगा और सुनावेगा वे दोनों पूर्ण आयु पर्य्यन्त सांसारिक भोगों को भोगकर देहान्त होने पर वैकुंठधाम को जायंगे । इसका भाव यह है कि वारवार इस इतिहास को सुनने सुनाने से तीर्थ में श्रद्धा होगी पीछे तीर्थस्नान तीर्थवासादि के द्वारा मुक्ति होगी ॥ ६५ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे स्कन्दागस्त्यसम्वादे कपिलायतनमाहात्म्ये वैश्यमोक्षो नाम सप्तमोऽध्यायः ।



अथाष्टमाध्यायकथारम्भः ।



(सूत उवाच)

इत्युक्त्वा पुनरप्याह श्रद्धाभक्तियुतं मुनिम् ॥
तत्तीर्थमहिमोपेतं भगवानग्निभूर्वचः ॥ १ ॥

सूतः स्वशिष्यान् कथयति यदित्युक्त्वार्थात्सप्तमाध्यायकथां कथित्वा पुनरप्यग्निभूर्भगवान्स्कन्दः श्रद्धाभक्तियुतं मुनिमगस्त्यं तत्तीर्थमहिमोपेतंवच आह ॥ १ ॥

सूतजी अपने शिष्यों से बोले कि स्कन्द भगवान् ने इस प्रकार सप्तमाध्याय की कथा सुनाने के पश्चात् श्रद्धा भक्ति से संयुक्त अगस्त्य मुनि से फिर भी उस तीर्थ की महिमा से संयुक्त वचन कहना आरंभ किया ॥ १ ॥

(स्कन्दोवाच)

पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि तीर्थस्यास्य महाद्भुतम् ॥
महिमानं मुनीशान ! सावधानतया शृणु ॥ २ ॥

स्कन्दोऽगस्त्यं कथयति यत् हे मुनीशान ! अगस्त्य ! पुनरन्यन्महाद्भुतं महाश्चर्य्यकरमस्य तीर्थस्य महिमानं प्रवक्ष्यामि कथयामि तत्सावधानतया सावधानेन मनसा शृणु ॥ २ ॥

स्कन्दजी ने अगस्त्य मुनि से कहा कि हे मुनिश्रेष्ठ ! फिर उसी तीर्थ की महाश्चर्य्यकारिणी दूसरी महिमा कहता हूं, सावधान होकर सुनो ॥ २ ॥

महाकुलीनोविप्रोऽभून्मद्रदेशेषु कश्चन ॥
धर्म्मात्मा कृषिकर्त्ता च दयावान्दीनवत्सलः ॥ ३ ॥
सुशीलः साधुसंसर्गी दानशीलः क्षमान्वितः ॥
महाधनी शुद्धभोगी भाग्यवांश्च जितेन्द्रियः ॥ ४ ॥
मानदोमानहीनेभ्यो दीनेभ्योधनदायकः ॥
विष्णु माहात्म्यसुश्रोता विष्णुभक्तिपरायणः ॥ ५ ॥

धर्म्मात्मा कृषिकर्त्ता दयावान् दीनवत्सलः सुशीलः साधुसंसर्गी दानशीलः क्षमावान् महाधनी शुद्धभोगी। धनवतां व्यसनबाहुल्याच्छुद्धभोगाभावोऽत उक्तम् शुद्धभोगः । विद्यमानोपकरणेष्वपि सात्विकभोगकर्त्ता। भाग्यवान् जितेन्द्रियोमानहीनेभ्योमानदोमानदाता दीनेभ्योदरिद्रेभ्योऽन्नप्रदायकोऽन्नदाता विष्णोर्माहात्म्यस्य सुश्रोता विष्णुभक्तिपरायणोमहाकुलीनः कश्चन विप्रोमद्रदेशेष्वभूदभवत् ॥ ३, ४, ५ ॥

मद्रदेश में महाकुलीन धर्मात्मा, खेती का काम करनेवाला, दयावान्, दीनों का प्रतिपालक, सुशील, साधुओं की संगति करनेवाला, दानशील, क्षमाशील, महाधनी, सात्विक भोग करनेवाला, भाग्यवान्, जितेन्द्रिय, मानहीनों को मान देनेवाला, दरिद्रियों को धन देनेवाला, विष्णुमाहात्म्य का श्रोता, विष्णु भगवान् की भक्ति में परायण एक ब्राह्मण रहता था ॥ ३, ४, ५ ॥

ईदृग्गुणविशिष्टस्य ब्राह्मणस्य तपोधन ॥
धर्मपत्न्यां तदातस्य सूनवोबहवोऽभवन् ॥ ६ ॥

हे तपोधन ! ईदृग्गुणविशिष्टस्य तस्य ब्राह्मणस्य धर्मपत्न्या बहवः सूनवोऽभवन् बभूवुः ॥ ६ ॥

हे अगस्त्य! इस प्रकार के उत्तम गुणों से सम्पन्न उस ब्राह्मण के उसकी धर्म पत्नी से अनेक पुत्र उत्पन्न हुए॥ ६॥

तेपि धर्मपराः सर्वे पितृधर्म्मपरायणाः॥
महात्मानोधर्मलब्धा बभूवुर्धनवर्धिनः॥ ७॥

ते सर्वे पुत्रा अपि धर्मपराः धर्मनिष्ठाः पितृधर्मपरायणा महात्मानोधर्मलब्धाधर्मोपार्जनाःधनवर्द्धिनोधनवृद्धिकर्तारश्च बभूवुः॥ ७॥

उसके वे पुत्र भी पिता के सदृश धार्मिष्ठ माहात्मा तथा धर्मपूर्वक धन लाभ करने और धन को बढ़ानेवाले हुए॥ ७॥

जातेषु तेषु पुत्रेषु गृहभारवहेषुच॥
यात्रार्थं सर्वतीर्थानांताननुज्ञाप्यनिर्ययौ॥ ८॥

स ब्राह्मणोगृहभारवहेषु तेषु पुत्रेषु जातेषु तान् पुत्राननुज्ञाप्य गृहभारं समर्प्य सर्वे तीर्थानां यात्रार्थं निर्ययौ गतवान्॥८॥

जब उसके सभी पुत्र गृह का भार संभालने योग्य हो गये तो उनको गृह कार्य्य में नियुक्त कर वह ब्राह्मण तीर्थों की यात्रा करने को चला गया॥ ८॥

तदातीर्थप्रसंगेन चक्रे पृथ्वीप्रदक्षिणम्॥
तेषु तेषुच तीर्थेषु सस्नौ स प्रमुदान्वितः॥ ९॥

तदा तदनन्तरं तीर्थप्रसंगेन तीर्थव्याजेन स विप्रः पृथ्वी प्रदक्षिणं चक्रे कृतवान्। येषु येषु तीर्थेषु गतस्तेषुतेषुच प्रमुदान्वितो हर्षेण संयुक्तः सस्नौ स्नानं कृतवान्॥ ९॥

तिसके बाद उसी तीर्थयात्रा के प्रसंग में पृथ्वी की प्रदक्षिणा की। वह जिन तीर्थों में गया उन २ तीर्थों में बड़े हर्ष के साथ स्नान किया॥९

यत्पयः यस्य सरसः पयसादुग्धेनसमम् तुल्यं पयोजलं पशवोपिनिपीय पीत्वा मानवीयोनिमासाद्य सद्यस्तत्कालं शुद्धि समन्विता भवन्तीति शेषः ॥ १३ ॥

जिस कपिलसर का दूध के समान जल पीकर पशु भी तत्काल मनुष्य-योनि पाकर शुद्ध होजाते हैं ॥ १३ ॥

तत्सरःसमनुप्राप्य सविश्रान्तमना अभूत् ॥
तत्रैव क्षेत्रप्रवरे क्षेत्रसंन्यासमाश्रितः ॥ १४ ॥

तत्सरस्समनुप्राप्य तत्कपिलसरोवरमागत्यतीर्थयात्रयापरिश्रान्त स ब्राह्मणोविश्रान्तमना अभूत्। तत्रैव क्षेत्रप्रवरे स क्षेत्र सन्न्यासमाश्रितः क्षेत्रसंन्यासं धृतवान् ॥ १४ ॥

उस कपिलसर पर आकर समस्त तीर्थों के परिभ्रमण से परिश्रान्त उस ब्राह्मण ने विश्राम करने की इच्छा की और उसी उत्तम क्षेत्र में क्षेत्र-सन्न्यास लेलिया ॥ १४ ॥

यावज्जीवमिदंक्षेत्रं नत्यक्षामि कदाचन ॥
इतियोनिश्चयश्चित्ते सक्षेत्रन्यास उच्यते ॥ १५ ॥

यावज्जीवं जीवनपर्य्यन्तमिदंक्षेत्रं कदाचन नत्यक्षामि न त्यजामीति यश्चित्ते निश्चयस्स क्षेत्रन्यास उच्यते ॥ १५ ॥

जबतक जीवन रहेगा तबतक इस क्षेत्र को कभी त्याग नहीं करूंगा इस मानसिक निश्चय को क्षेत्र-सन्न्यास कहा जाता है ॥ १५ ॥

तथा स मद्रदेशीयोविप्रस्तीर्थशिरोमणौ ॥
तत्तीर्थदैवतं चक्रे शरणं मरणावधि ॥ १६ ॥

तथा तदनन्तरं स मद्रदेशीयो विप्रो ब्राह्मणस्तीर्थशिरोमणौ तीर्थराजे तत्तीर्थदैवतं कपिलमुनिं मरणावधि मरणपर्यन्तं शरणं चक्रे कृतवान् ॥ १६ ॥

उसके अनन्तर वह मद्रदेशी ब्राह्मण उस तीर्थ शिरोमणि कपिल क्षेत्र में मरणावधि तीर्थ देव कपिल भगवान् का शरण्य हो गया ॥ १६ ॥

एवं नियसतस्तस्य तस्मिंस्तीर्थ सरोवरे ॥
व्यतीयुः शरदः पंच स्नातस्त्रिषवणं सदा ॥ १७ ॥

एवं तस्मिन्तीर्थसरोवरे नियसतो निवासंकुर्वतस्त्रिषवणं स्नातस्तस्य विप्रस्य पंचशरदः पंचवर्षाणि व्यतीयुः ॥ १७ ॥

एवं कपिलतीर्थ में निवास करते और त्रिकाल स्नान करते उस ब्राह्मण को ५ वर्ष बीतगये ॥ १७ ॥

सम्प्राप्ते पंचमे वर्षे शुद्धभावेन सत्तम ॥
तुष्टाव तं तीर्थवरं सांख्यबुद्धिप्रवर्तकम् ॥ १८ ॥

पंचमे वर्षे सम्प्राप्ते सांख्यबुद्धिप्रवर्तकं सांख्यबुद्धिप्रदातारं तं तीर्थवरं शुद्धभावेन तुष्टाव स्तुतिश्चकार ॥ १८ ॥

पांचवां वर्ष जब प्राप्त हुआ तो शुद्ध भाव से उस ब्राह्मण ने सांख्यबुद्धि के प्रवर्तक उस तीर्थवर की स्तुति की ॥ १८ ॥

* तीर्थराजस्तुतिः *

संकीर्णी करणं पापं नाना वरणकारणं ॥
यदि स्नातं कापिलीये किंतत्पातकतोभयम् ॥ १९ ॥
अजातीयं तथा पापं जाताजातत्त्वयं करम् ॥
यदि स्नातं कापिलीये किंतत्पातकतोभयम् ॥ २० ॥

मलिनीकरणं पापं महामलफलप्रदम् ॥
यदि स्नातं कापिलीये किंतत्पातकतोभयम् ॥ २१ ॥
जाति भ्रंशकरं पापं कृतंदुर्योनिदं भवे ॥
यदि स्नातं कापिलीये किंतत्पातकतोभयम् ॥ २२ ॥
उपपातक संज्ञंयत् कूटशाल्मलिदायकम् ॥
यदि स्नातं कापिलीये किंतत्पातकतोभयम् ॥ २३ ॥
अतिपापफलंपूयकुंडेऽधोमुखपातनं ॥
यदिस्नातं कापिलीये किंतत्पातकतोभयम् ॥ २४ ॥
महापापं महापीडकुंभीपाकफलप्रदम् ॥
यदि स्नातं कापिलीये किंतत्पातकतोभयम् ॥ २५ ॥
यानिकानिच पापानि भवन्तु भुवनत्रये ॥
यदि स्नातं कापिलीये किंतत्पातकतोभयम् ॥ २६ ॥
सर्वाण्यघानि नश्यन्ति तीर्थराट् ते प्रसादतः ॥
इति संचिन्त्य मनसा त्वामहं शरणं गतः ॥ २७ ॥

नोट—यद्यपि तीर्थराज स्तुति का अर्थ नहीं लिखा गया है तथापि स्तुति में बहुत से पापों के नाम लिखे गए हैं उनके लक्षण लिखना अवश्य है अतः उनका विवरण और उनसे अतिरिक्त पापों की नामावली तीन वर्ग में विरक्त करके लिखता हूं क्योंकि स्तुति में जितने पाप परिगणित हैं उनसे अतिरिक्त पापों की भी गणना पृथक रूप में उनके उनके नामों से नहीं लेकर एकत्रही स्तुति के अन्त में " यानि कानि च पापानि " इस श्लोक में अशेष विशेष कुल पापों को लेही लिया गया है अतः नीचे की नामावली महापातक, पातक, उपपातक इन तीन भेदों से है फिर उपपातकों के भी दो भेद हैं जिनमें कितनों से वचना॰

इति सस्तुवत स्तस्य विप्रस्य कलशोद्भव ॥
हृदि कोपि प्रकाशोऽभूद् ज्ञान ध्वांतनाशन ॥ २८ ॥

हे कलशोद्भव ! इति एवं संस्तुवत स्तुति कुर्वतस्तस्य विप्रस्य हृदि हृदये अज्ञान ध्वांतनाशनः कोपिप्रकाशोऽभूत् । तीर्थराज प्रसादत्त हृदयान्धक रोनष्ट ॥ २८ ॥

हे अगस्त्य ! इस प्रकार स्तुति करता हुआ उस ब्राह्मण का हृदय में अज्ञानरूपी अन्धकार को नाश करनेवाला एक प्रकाश उत्पन्न हुवा ॥२८

---

*संभव है और कितनों से बचना गृहस्थाश्रम महाअसम्भव है जिनका बोध नामावली देखने से स्वतः पाठक और श्रोताओं को होजायगा अतः उनको पृथक् नहीं किया है ।

महापातकनामानि सोपपातकानि ।

महापातक तो पांच ही हैं १ ब्रह्महत्या २ मद्यपान ३ सुवर्ण की चोरी ४ गुरुपत्नीगमन ५ इनके संसर्गी । और जितने १ धूत मधुत का अभिचार २ संकरी करण ३ मलिनी करण ४ अपात्री करण ५ जातिभ्रंशकरण ६ अविहित कार्य का करना ७ कर्म का लोप करना ८ रसवेचना ९ कन्याविक्रय करना १० अश्व विक्रय ११ गोविक्रय १२ खर विक्रय १३ उष्ट्र विक्रय १४ दासी विक्रय १५ बकरे आदि पशुओं का विक्रय १६ अपना घर बेचना १७ नीली विक्रय १८ जिस वस्तु को खरीदने की सामर्थ नहीं उसको बेचना १९ सौदा किसी तरह का बेचना २० जल में रहने वाले जानवर का विक्रय २१ स्थल जन्तु का विक्रय २२ आकाश में रहनेवाले जन्तु का विक्रय २३ व्यर्थ वृक्ष का काटना २४ ऋण का न देना २५ ब्राह्मण का द्रव्य हरना २६ देवस्व का हरण करना २७ राजस्व का हरण करना २८ परद्रव्य का अपहरण करना २९ तेल, घी आदि वस्तुओं का अपहरण करना ३० फल चाखना ३१ लोहा आदि धातु का [illegible]

तदायं सुतपाविप्रस्तुरीयज्ञानभूमितः॥
दृश्यमानं जगज्जातं ददर्श हृदि चित्रवत्॥ २६॥

तदा तस्मिन्काले यदा विप्रस्य हृदि प्रकाशोजातस्तदायं सुतपा विप्रोब्राह्मणस्तुरीयां ज्ञानभूमिङ्गतः ज्ञानस्यसप्त भूमयो-भवन्ति तत्तद्दर्शनंपातञ्जलियोगसूत्रे। तस्य सप्तधाप्रान्तभूमिः

¹अपहरण करना ३२ अवस्तु का हरण करना ३३ ब्राह्मणनिन्दा ३४ गुरुनिन्दा ३५ वेदनिन्दा ३६ शास्त्रनिन्दा ३७ परनिन्दा ३८ अभक्ष्यभक्षण ३९ अभोज्यभोजन ४० अचोष्यचोषण ४१ अलेह्यलेहन ४२ अपेयपान ४३ अछूत को छूना ४४ जो बात सुनने के योग्य नहीं वह सुनना ४५ जो हिंसा के योग्य नहीं उसको हिंसन करना ४६ जिसकी स्तुति नहीं करना चाहिये उसकी स्तुति करना ४७ जो अचिन्त्य है उसकी चिन्ता करना "यहांपर अचिन्त्य शब्द का अर्थ परब्रह्म (जो शास्त्रों में लिखा है वह) समझकर ईश्वर चिन्तन पाप है ऐसा न समझ लेना चाहिये नहीं तो अर्थ का अनर्थ होजायगा शास्त्रों में 'अचिन्त्याव्यक्तरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने समस्तजगदाधारमूर्तये ब्रह्मणे नमः' इस वाक्य में ब्रह्म को अचिन्त्य अव्यक्त निर्गुण गुणात्मा और समस्तजगत् का आधार मानकर प्रणाम किया गया है इसलिये अचिन्त्य शब्द से जिस बात के स्मरण करने से चित्त में प्रसन्नता हो वह ईश्वर बोधक अचिन्त्य शब्द को छोड़ बाकी जगह में जहां कि किसी बातको स्मरण करने से चित्त में ग्लानि पैदा होती हो उस अचिन्त्य का चिन्तन पाप समझना" ४८ अयाज्य जो यज्ञ करने का अधिकारी नहीं उससे यज्ञ कराना या जो यज्ञ नहीं करना चाहिये वह यज्ञ करना ४९ अपूज्य का पूजन करना ५० माता पिता का तिरस्कार करना ५१ स्त्री पुरुष के परस्पर की प्रीति को छुड़ाना भेद लगादेना‡

इति संस्तुवत स्तस्य विप्रस्य कलशोद्भव ॥
हृदि कोपि प्रकाशोऽभूद ज्ञान ध्वांतनाशन ॥ २८ ॥

हे कलशोद्भव ! इति एवं संस्तुवत स्तुतिं कुर्वतस्तस्य विप्रस्य हृदि हृदये अज्ञान ध्वांतनाशनः कोपिप्रकाशोऽभूत् । तीर्थराज प्रसादात्त हृदयान्धक रोनष्ट ॥ २८ ॥

हे अगस्त्य ! इस प्रकार स्तुति करता हुआ उस ब्राह्मण का हृदय में अज्ञानरूपी अंधकार को नाश करनेवाला एक प्रकाश उत्पन्न हुआ ॥२८

---

*संभव है और कितनों से बचना गृहस्थाश्रम महाअसम्भव है जिनका बोध नामावली देखने से स्वतः पाठक और श्रोताओं को होजायगा अतः उनको पृथक् नहीं किया है ।

महापातकनामानि सोपपातकानि ।

महापातक तो पांच ही हैं १ ब्रह्महत्या २ मद्यपान ३ सुवर्ण की चोरी ४ गुरुपत्नीगमन ५ इनके संसर्गी । और जितने १ द्यूत अद्यूत का अविचार २ संकरी करण ३ मलिनी करण ४ अपात्री करण ५ जातिभ्रंशकरण ६ अविहित कार्य का करना ७ कर्म का लोप करना ८ रसवेचना ९ कन्याविक्रय करना १० अश्व विक्रय ११ गोविक्रय १२ खर विक्रय १३ उष्ट्र विक्रय १४ दासी विक्रय १५ बकरे आदि पशुओं का विक्रय १६ यात्रा पर बेंचना १७ नीली विक्रय १८ जिस वस्तु को खरीदने की सामर्थ नहीं उसको बेंचना १९ सौदा किसी तरह का बेंचना २० जल में रहने वाले जानवर का विक्रय २१ स्थल जन्तु का विक्रय २२ आकाश में रहनेवाले जन्तु का विक्रय २३ व्यर्थ वृक्ष का काटना २४ ऋण का न देना २५ ब्रह्मस्व का हरण करना २६ देवस्व का हरण करना २७ राजस्व का हरण करना २८ पुरुष का अपहरण करना २९ तेल, घी आदि वस्तुओं का अपहरण करना ३० फल चुराना ३१ लोहा आदि धातु

तदायं सुतपाविप्रस्तुरीयज्ञानभूमितः ॥
दृश्यमानं जगज्जातं ददर्श हृदि चित्रवत् ॥ २६ ॥

तदा तस्मिन्काले यदा विप्रस्य हृदि प्रकाशोजातस्तदायं सुतपा विप्रोब्राह्मणस्तुरीयां ज्ञानभूमिङ्गतः ज्ञानस्यसप्त भूमयोभवन्ति तत्तद्दर्शनंपातञ्जलियोगसूत्रे। तस्य सप्तधाप्रान्तभूमिः

१ अपहरण करना ३२ अवस्तु का हरण करना ३३ ब्राह्मणनिन्दा ३४ गुरुनिन्दा ३५ वेदनिन्दा ३६ शास्त्रनिन्दा ३७ परनिन्दा ३८ अभक्ष्यभक्षण ३९ अभोज्यभोजन ४० अचोष्यचोषण ४१ अलेह्यलेहन ४२ अपेयपान ४३ अछूत को छूना ४४ जो बात सुनने के योग्य नहीं वह सुनना ४५ जो हिंसा के योग्य नहीं उसको हिंसन करना ४६ जिसकी स्तुति नहीं करना चाहिये उसकी स्तुति करना ४७ जो अचिन्त्य है उसकी चिन्ता करना " यहांपर अचिन्त्य शब्द का अर्थ परब्रह्म (जो शास्त्रों में लिखा है वह) समझकर ईश्वर चिन्तन पाप है ऐसा न समझ लेना चाहिये नहीं तो अर्थका अनर्थ होजायगा शास्त्रों में ' अचिन्त्याव्यक्तरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने समस्तजगदाधारमूर्ते ये ब्रह्मणे नमः ' इस वाक्य में ब्रह्म को अचिन्त्य अव्यक्त निर्गुण गुणात्मा और समस्तजगत् का आधार मानकर प्रणाम किया गया है इसलिये अचिन्त्य शब्द से जिस बात के स्मरण करने से चित्त में प्रसन्नता हो वह ईश्वर बोधक अचिन्त्य शब्द को छोड़ बाकी जगह में जहां कि किसी बातको स्मरण करने से चित्त में ग्लानि पैदा होती हो उस अचिन्त्य का चिन्तन पाप समझना " ४८ अयाज्य जो यज्ञ करने का अधिकारी नहीं उससे यज्ञ कराना या जो यज्ञ नहीं करना चाहिये वह यज्ञ करना ४९ अपूज्य का पूजन करना ५० माता पिता का तिरस्कार करना ५१ स्त्री पुरुष के परस्पर की प्रीति को छुड़ाना भेद ...

प्रज्ञा ॥ तस्य विवेकख्यातिनिष्ठस्य हानोपायस्य प्रान्तभूमिका रूपिणी प्रज्ञा योगजधर्मात्कार्यरूपिणी सप्तप्रकारा। तद्यथा हेयन्दुःखम्मया परिज्ञातमतोनात्र किमपि ज्ञातव्यमित्येकाप्रज्ञा। तथा विवेकख्यातिरूपोहानोपायोमयानिष्पादितोनास्य निष्पा- दनमवशिष्यते तत्फलानुभवादिति द्वितीया। तथा हेय

: ५२ परस्त्री गमन ५३ वेश्या गमन ५४ दासी गमन ५५ चाण्डालादि गमन ५६ अयोनि गमन ५७ रजस्वला गमन ५८ परदादि गमन ५९ कूट साक्षी (झूठी गवाही) ६० पैशुन्यवाद (चुगली करना) ६१ झूठ बोलना ६२ म्लेच्छ संभाषण ६३ ब्रह्म द्वेष ६४ ब्रह्मवृत्ति हरण ६५ वृत्ति छेदन वृत्तिच्छेदोहितद्वधः (वृत्ति का छुडाना उसको वध करने के बराबर होता है) ६६ परवृत्ति को ले लेना ६७ मित्र को ठगना ६८ गुरु को ठगना ६९ स्वामी को ठगना ७० गर्भपात करना ७१ रास्ते चलते ताम्बूल चावना ७२ हीन जाति की सेवा करना ७३ परान्न भोजन करना ७४ लसुन, कान्दा, गाजर और तालफल आदि फलों का भक्षण करना ७५ झूठा खाना ७६ मार्जारोच्छिष्ट खाना ७७ बासी अन्न खाना ७८ पंक्ति भेद करना ७९ भ्रूण हिंसा ८० पशु हिंसा ८१ बाल हिंसा ८२ और किसी भी प्रकार की हिंसा ८३ अपवित्र रहना ८४ स्नान नहीं करना ८५ सन्ध्या को त्याग करना ८६ अग्निहोत्र छोड़देना ८७ बलि वैश्वदेव को त्याग करदेना ८८ निषिद्ध आचरण करना ८९ कुग्राम में वास करना ९० ब्रह्मद्रोह ९१ गुरु द्रोह ९२ पितृ मातृ द्रोह ९३ पर द्रोह ९४ आत्मस्तुति ९५ दुष्टजन संसर्ग ९६ गौ की सवारी ९७ वृषभ की सवारी ९८ भैंसे की सवारी ९९ गधे की सवारी १०० ऊंट की सवारी १०१ बकरे की सवारी १०२ मृत्याभरण १०३ अपने ग्राम को त्याग करना १०४ गोत्र त्याग करना १०५ कुल का त्याग करना३

र्नवोऽविद्याकामकर्मादयोममारोपतः क्षीणाः । नेतव्यंचेतव्यमव-शिष्यते इति तृतीया । तथा दुःरहानरूपमोक्षाख्यफलं तद्गोचराऽ-सम्प्रज्ञातयोगेन साक्षात्कृतं न पुरुषार्थस्यापिज्ञातव्यमवशिष्यत-इति चतुर्थी प्रज्ञा । तदेस्वस्यकृत्यसमाप्त्यनुभवरूपम्प्रज्ञाचतुष्टयम् ।

---

§१०६ दूर से सलाहदेना १०७ ब्राह्मणों की आशा भेदन करना १०८ अपूज्य का आशीर्वाद लेना और १०९ पतित से बात चीत करना इत्यादि उपपातक हैं । इन में व्यर्थ के मनोरथ बान्धना भी शामिल है । इन सब उपपातकों के नाश के विषय में कपिलसरोवर की स्तुति उस ब्राह्मण देव ने की है । मनुना जातिभ्रंशंकरसंकरीकरणापात्री करण-मलिनीकरणसंज्ञानि पातकानि परिगणितानि यथा ब्राह्मणस्य रुजः कृत्या घ्रातिरघ्रेयमद्ययोः । जैह्म्यं पुंसिच मैथुन्यं जाति भ्रंशकरं स्मृतम् । खराश्वो-ष्ट्रमृगेभानामजाविकवधस्तथा ॥ संकरीकरणज्ञेयमीनाहिमहिषस्यच ॥ निन्दितेभ्योधनादानं वाणिज्यंशूद्रसेवनम् । अपात्रीकरणंज्ञेयमसत्यस्य-चभाषणम् ॥ कृमिकीटवयोहत्या मद्यानुगतभोजनम् । फलैधः कुसुम-स्तेयमधैर्य्यंच मलावहम् इति ॥ महापातकंपुच स्वर्णस्तेयी, ब्राह्मण सुवर्णस्तेयी, महापातकी भवति । सुरापान जो महापातक कहा गया है वहां विचार है सुरा के ११ भेद हैं उनमें मुख्य गौडी माध्वी और पैष्ठी ३ हैं इस में प्रथम पक्ष तो यह है कि निषिद्धसुरा का पान नहीं करना तदनन्तर गौणी माध्वी और पैष्ठी में पैष्ठी का पान महापातक है । अन्त में धर्मशास्त्रकारों का वचन है कि ब्राह्मण किसी तरह के मद्य या सुरा का पान न करे और क्षत्रिय वैश्य यदि करे तो महापातकी नहीं । इस प्रकार यहां साधारण विचार दिखाया है विशेष धर्मशास्त्रों में वर्णित है । पांचवाँ जो संसर्गी है वह यदि महापातकियों का लगातार वर्ष भर संसर्ग करे तो पातकी होता है वह भी ज्ञानावस्था में । शेष जो उपपातकादि लघुपातकादि हैं उनका नाम सदृशही साधारण प्रायश्चित है कितने सन्ध्यावन्दन और गायत्री जप से ही नष्ट होते हैं कितने श्रावणयादि कर्मों द्वारा निवृत्त हो जाते हैं ॥

मानिविदेहकेशन्यकालीनावस्थानुभवरूपभ्रान्त्यवस्थात्रयं स्वयमे-
वाग्रे वन्दपतीनिसृत ज्ञानभूमयस्तत्र विप्रस्य कपिलमुनि प्रसादाज्जात
हृत्प्रकाशो यदनंकासनबन्धप्राणायामप्रत्याहारादिनाभूमयोस्मि-
दृष्यन्ति तासु भूमित्रयं जातप्रकाशमात्रेणैवासिद्धज्ञानम् लब्ध
प्रकाशो स तुरीयज्ञानभूमितो दृश्यमानं जगज्जातमशेषतस्तं जगदृदि
चित्रवत्पश्यति ॥ २६ ॥

जब उस ब्राह्मण को कपिलमुनि की प्रसन्नता से एकाएक हृदय में प्रकाश उत्पन्न होने से तुरीयावस्था आगई तो वह तुरीया ज्ञान भूमि में आकर समस्त जगत को अपने हृदय में ही देखने लगा था पातंजलि योग सूत्र में ज्ञान की सात भूमि वर्णन की गई हैं जो यम नियम के साथ क्रम से आसन बंध प्राणायाम प्रत्याहार ध्यान धारणा और समाधि द्वारा घोर परिश्रम करने पर योगियों को क्रम से प्राप्त होती हैं जिनमें प्रथम भूमि यह है कि मैं ने दुःख को जान लिया अब इसके विषय में कुछ नहीं जानना है उसको त्याग करना चाहिये। और मिथ्या ज्ञान वासना से रहित अन्तरात्मा को विवेकख्याति कहते हैं या हानोपाय कहते हैं इसलिये मिथ्या वासना से रहित अन्तरात्मा को कर लिया अब इसमें कुछ शेष नहीं है ऐसी स्थिति को दूसरी ज्ञान भूमि कहते हैं। तथा त्याग करने के योग्य जो अविद्या काम कर्म आदि इनके विशेष नाश होने को ज्ञान की तीसरी भूमि कहते हैं। और योगियों का पुरुष-साक्षात्कार-रूप मोक्षप्राप्ति पुरुषार्थ है इस पुरुषार्थ का ज्ञान कर लिया अब इसके ज्ञान में कुछ शेष नहीं है इसको ज्ञान की चौथी भूमि कहते हैं। इस तरह महापरिश्रम-साध्य और योगियों से भी दुःप्राप्य चार भूमिका को जीतकर चतुर्थ भूमि से वह ब्राह्मण बाह्य दृश्य पदार्थ को अपने हृदयपट खोलकर चित्रवत् देखने लगा। अब शेष की तीन भूमिकाओं का वर्णन आगे के श्लोकों में करते हैं॥ २६ ॥

सुप्तिवस्वप्नवैव कालेन कियता पुनः ॥
दृश्यादृश्यमभूदेतत्पंचमभूमिकास्थितेः ॥ ३० ॥

एवं चतुर्थ्यां भूम्यां सर्वजगज्जातं हृदिभावयन् कियता कालेनैवं कुर्वन् पंचमींभूमिमाश्रितः पातंजलियोगसूत्रे पंचमी-लक्षणमुक्तं यथा समाप्त भोगाप वर्गामि बुद्धिर्भविष्यतीत्येवमाकारा पञ्चमांभूमिः यद्गत्वा भोगापवर्गाभ्यामपि योगी निवृत्तो भवति। तत्रगतस्य विप्रस्यैतद्दृश्यादृश्यं सर्वं सुप्तिवत्स्वप्नवच्चैवाभूत्। स्वप्नवदयंसंसारोजातः । सर्वंमिथ्या मयमभूत् ॥ ३० ॥

इस तरह जब चतुर्थी भूमि में प्राकर उस ब्राह्मण को सम्पूर्ण जगत् हृदय में ही दीखते कुछ दिन बीत गये तो अब पांचवीं ज्ञान भूमि में प्रवेश किया जहां समस्त संसार के बाह्य दृश्य और अदृश्य पदार्थ स्वप्न के ऐसे मालूम देने लगे और मन केवल परब्रह्म में लीन होने लगा ॥ ३० ॥

पुनः षष्टीमितः प्राज्ञः स्वतोदृश्यं न पश्यति ॥
परैरुत्थापितः क्वापि स्वप्नवद्दृश्यमीक्षते ॥ ३१ ॥

प्राज्ञः ज्ञानवान् स ब्राह्मणः पुनरितोथीत्पंचमीभूमिकातः षष्टींगतः अस्यालक्षणं पातञ्जलियोगसूत्रे। यथा बुद्धिरूपेण परिणताः सत्वादयोगुणाः स्वकारणे लयमेष्यन्तीत्येवमाकारा षष्टी ज्ञानभूमिः । एवं सत्वादिष्वपिलयंगतेषु उन्मनीभावं-प्राप्तः। स्वतः स्वदृष्टितोदृश्यं किमपिन पश्यति सुषुप्ति भावं-प्राप्तइव क्वापि कस्मिंश्चित्कालेपि परैरन्यजनैरुत्थापित उद्बोधितः स्वप्नवद्दृश्यमीक्षते पश्यति उक्तञ्च योगशास्त्रे समाधि प्रकरणे। प्रनष्टः स्वाशानिश्वासः प्रध्वस्तविषयग्रहः निश्चेष्टोनिर्विकार-

श्चलयोजयति योगिनाम् ॥ उच्छिन्नसर्वसंकल्पोनिः शेषाशेषचेष्टितः ॥ स्वावगम्योलयः कश्चिज्जायते वागगोचरः ॥ ३१ ॥

वह ब्राह्मण पंचमीभूमिका में कुछ दिन रह कर तब ज्ञान की छठी भूमि में आया और इस भूमि में अपनी आंखों से कुछ नहीं देखता था और सोए हुए मनुष्य के ऐसा दीखने लगा तथा जब दूसरे आकर जगाते थे तो दृश्यवस्तु को स्वप्नवत् देखता था। पातंजलि योग सूत्र में षष्ठी भूमिका का लक्षण यह कहा गया है कि जिस अवस्था में अविद्या रूप से परिणत सत्वादि गुण अपने २ कारण में लय हो जाते हैं उसको छठी भूमि कहते हैं। इस भूमि में योगी पूर्ण समाधि का अधिकारी हो जाता है और परब्रह्म में लीन होने लगता है जिसका लक्षण हठ योग में ऐसा लिखा है कि श्वास और प्रश्वास दोनों नष्ट हो जाते हैं अर्थात् इड़ा पिंगला दोनों नाड़ियां बन्द होजाती हैं और इन्द्रियों द्वारा विषयों को ग्रहण करने की शक्ति नष्ट हो जाती है साधक निश्चेष्ट अर्थात् निर्जीव सा और निर्विकार हो जाता है उस समय प्राण नाभी से कंठ तक सुषुम्णा की गति से चलता रहता है इसको लयावस्था कहते हैं इसमें सभी संकल्प विकल्प उच्छिन्न हो जाते हैं और एकाएक मूर्च्छा तो नहीं हो जाती परन्तु करचरणादि का व्यापार बन्द हो जाता है शरीर पर यदि कोई कीटादि चढ़ जाय या मच्छर और मक्खियां भी काट खायं तो इसका कुछ ज्ञान नहीं होता परन्तु अन्तरगत सचेष्ट प्राण भ्रमण करता रहता है इसको असंप्रज्ञात समाधि कहते हैं इसका जाननेवाला वही पुरुष होता है जो उस अवस्था को पंहुचा है दूसरा नहीं जान सकता। जिसको दृष्टि देख नहीं सकती वाणी वर्णन नहीं कर सकती ऐसी विलक्षण लय योगियों को ही उत्पन्न होती है ॥ ३१ ॥

सप्तमीं भूमिकां प्राप्तः पुनः पूर्णतपोबलात्॥
चिदानन्दजलेलीनोऽदृश्यन्नापश्यदेकदृक्॥ ३२॥

पुनः पूर्णतपोबलात् सप्तमीन्भूमिकाम्प्राप्तस्स चिप्रचिदानन्दजले परब्रह्मैकरसेनिमग्न आत्मपरमात्मनोरैकी भावङ्गतः। तदैकदृग्भूत्वा परपन्नपिनापश्यत्॥ इयं पूर्णं समाधिः। अत्र पूर्णलयावस्थाभवति तल्लक्षणम्। यत्र दृष्टिर्लयस्तत्र भूतेन्द्रिय सनातनी॥ साशक्तिर्जीवभूतानां द्वे अलक्ष्ये लयंगते॥ समाधिस्तुयथा। सलिले सैन्धवं यद्वत्साम्यं भजति योगतस्तथात्ममन सोरैक्यं समाधिरभिधीयते॥ यदा संचीयते प्राणोमानसंच प्रलीयते॥ तदा समरसत्वंच समाधिरभिधीयते॥ तत्समंच द्वयोरैक्यं जीवात्मपरमात्मनोः। प्रनष्टः सर्वसंकल्पः समाधिः सो भिधीयते। राजयोगस्य माहात्म्यं कोवा जानाति तत्वतः॥ ज्ञानं मुक्तिः स्थितिः सिद्धिर्गुरुवाक्येन लभ्यते॥ दुर्लभोविषयत्यागो दुर्लभन्तत्वदर्शनम्। दुर्लभासहजावस्था सद्गुरोः करुणाम्बिना॥ अर्द्धोन्मीलितलोचनःस्थिरमनाःनासाग्रदत्तेक्षणश्चन्द्रार्कावपि लीनतामुपनयन्निष्पन्दभावेनयः ज्योतीरूपमशेषबीजमखिलन्देदीप्यमानम्परन्तत्वन्तत्पदमेतिवस्तु परमं वाच्यं किमत्राधिकम्॥ इतिहठयोगे। पातञ्जलियोगसूत्रेतु सप्तमी भूमिकालक्षणं यथा— प्रलीनानां तेषां न पुनर्बुद्धिरूपेणपरिणामोभविष्यतीत्येवमाकारा सप्तमी भूमिः एवं सप्तप्रकाराऽनुभवोयस्य विदुषोजायते तस्य ज्ञाननिष्ठा सद्योमुक्तिदेति ज्ञातव्या॥ ३२॥

इस तरह छठी भूमि को पार कर वह तपस्वी सातवीं योग भूमि में आया और निश्चल नेत्र से देखता भी था तो कुछ नहीं समझता कि क्या देख रहा है। अपने पूर्ण तपो बल से परब्रह्म रूपी जल में डूब गया अर्थात् पूर्ण लय भाव के साथ असंप्रज्ञात

विन्न होगया पूर्ण लय का लक्षण योगशास्त्र में लिखा है शरीर के अन्दर मूलाधार स्वाधिष्ठान नाभिचक्र हृदयस्थान कण्ठ- भृकुटी और सहस्रदल इन स्थानों में जहां कहीं प्रत्यय के र में दृष्टि रहे वहां ही लय हो जाय और पृथिव्यादि पंचभूत आंख कान नाक इत्यादि पांचों कर्मेन्द्रियों के सनातन व्यापार जो अविद्या है एवं प्राणियों की जो वासनाशक्तियां हैं ये सब अदृष्ट परमात्मा में लय हो जायं इसको लय कहते हैं। जलि योग सूत्र में भी सप्तमी भूमिका का वर्णन इस तरह ता है कि जहां पर छठी भूमि में सत्वादि का लय हुवा है का बुद्धिरूप से फिर कुछ परिणाम न हो उसको सप्तमी भूमि ते हैं इस तरह सातों भूमिका का अनुभव जिस विद्वान को हो ता है उसकी ज्ञाननिष्ठा तत्काल मुक्ति देनेवाली होती है। समाधि लक्षण योगशास्त्र में लिखे हैं कि जैसे जल में नमक मिलकर हो जाता है फिर अलग नहीं हो सकता वैसे आत्मा और परमत्मा एकता हो तो उसको समाधि कहते हैं। जब प्राण और मन दोनों हो जाते हैं तब आत्मा परमात्मा का एकरस होता है उसको ाधि कहते हैं । जब जीवात्मा परमात्मा की एकता होती हैं तब सब ल्प विकल्प नष्ट हो जाते हैं उसको समाधि कहते हैं। हठ योग केवल प्राण को जीतना होता है और उससे कोई काम नहीं चलता तने आसन मुद्रा नेति धौती वस्ती कापालक्रिया नौली और विविध ार के प्राणायाम की सिद्धि प्रत्याहार ध्यान धारणा इत्यादि हैं ये प्राण जो इड़ा पिंगला नाडी हैं इनको जीतने के लिये है इनके तने पर राजयोग आरंभ होता है समाधि के अधिकारी हठयोगी ायामादि साधन द्वारा हो जाता है, परन्तु राजयोग के बिना सब फल है। एक कलाबाजों के खेल के ऐसा है। वह परिश्रम राज योग के ा सफल होता है इसलिये साधक राजयोग का अभ्यास भी साथ

ही प्रारंभ करते हैं राजयोग के बिना लयावस्था नहीं होती जीवात्मा परमात्मा की एकता नहीं होती तो भी कोई २ भाग्यवान हठयोग बिना ही राजयोगकी सिद्धि अपने पूर्वपुण्यों के बलसे पालेते हैं जैसे इस ब्राह्मणने पाया है राजयोग का वर्णन योग शास्त्र में किया गया है कि राजयोग के माहात्म्य को यथार्थरूप से कोई नहीं जानता ज्ञान मुक्ति, स्थिति और सिद्धि गुरुवाक्य से प्राप्त जो राजयोग उसी से होती है इस राजयोग के लिये तीन वस्तु अलभ्य हैं एक तो विषय का त्याग करना, दूसरा तत्वों का दर्शन तथा तीसरा सहजावस्था तुरीयावस्था अर्थात् योग की चतुर्थभूमि, ये तीनों पदार्थ गुरु की कृपा बिना नहीं मिलते, तुरीयावस्था के बाद निजशक्ति द्वारा भी काम चल जाता है इस तपस्वी को भी तुरीयावस्था तक आने के लिये सांख्याचार्य कपिलमुनि को ही ध्यानस्थ गुरु बनाना पड़ा था इति ॥ और समाधिस्थ योगी का रूप ऐसा होता है। जो योगी परमसमाधिगत होता है उसकी दृष्टि नासिका के आगे १२ अंगुल पर आकाश में स्थिर रहती है और सूर्य चन्द्र से मतलब इडा पिंगला से है इन दोनों नाडियों के व्यापार को लय करके निष्पन्द भाव से अर्थात् निश्चल रूप से अपना सिद्ध किया हुवा आसन से बैठा रहता है ऐसी अवस्था में जब काष्ठ या पाषाण सदृश स्थिर हो जाता है तब सम्पूर्ण संसार के आदि बीज पूर्ण सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मा के ज्योति रूप जो चमकता हुवा तत्व है उस पद को देखता है वशिष्टजी ने कहा है कि अब इससे अधिक क्या कह सक्ता हूं जब परम तत्व का दर्शन हो गया तो अब इसके बाद कुछ बाकी ही नहीं है ॥ ३२ ॥

यानिशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ॥
यस्यां जागर्ति भूतानि सानिशा पश्यतोमुनेः ॥३३॥

जो निशा अर्थात् यानिशा अविद्यारूप रात्रि है जिसमें तमाम जगत् सोया हुआ रहता है उसमें इन्द्रिय-निग्रहकारी माहात्मा जागते हैं अर्थात् अविद्या का नाश करके परब्रह्म की चिन्तना करते हैं। और जिसमें सब जगत जागता है उस शब्दादि विषरूप रात्रि में योगिन सोते हैं अर्थात् यह उनकी रात्रि है॥ ३३॥

देहंच नश्वरमवस्थितमुत्थितंवा
सिद्धो न पश्यति यतोऽध्यगमत्स्वरूपम्।
दैवादुपेतमथदैववशादपेत-
म्वासोयथा परिधृतं मदिरामदान्धः॥ ३४॥

जो माहात्मा परब्रह्म को साक्षात्कार कर चुके हैं वे यह नाशवान् शरीर रहे या न रहे इसको नहीं देखते। जैसे मदिरा के मद से कोई व्यक्ति अपने पहने हुए वस्त्र को नहीं जानता कि उसके शरीर पर है या नहीं॥ ३४॥

इति संजात विज्ञानं मद्रदेशोद्भवं द्विजम्॥
दृष्ट्वा मनोनवस्थावान् संजातः कपिलोमुनिः॥ ३५॥

इस प्रकार घोर तपस्या से विज्ञान प्राप्त किया हुआ उस मद्रदेशी ब्राह्मण को देख कपिलमुनि के मन की अनवस्था हो गई अर्थात् अब इसके साथ क्या करना चाहिये इस विचार से चित्त चंचल हो गया॥ ३५॥

स्थानादुत्थाय गच्छन्तं शनैर्मीलितलोचनम्॥
ददर्श सद्यः प्रसूतेव गौरन्वगमज्जद्धरिः॥ ३६॥

मीलितलोचनं ध्यानावस्थं स्वस्थानादुत्थायशनैर्गच्छन्तमनुवर्त्मं सद्यः प्रसूता गौरिवहरिर्भगवान् कपिलमन्वगमत् तमनुधावन् अत्र कपिलाचार्यस्य ईश्वरांशत्वाद्धरिरागत्य कपिलसेवां कृतवान् इति॥ ३६॥

नाभिक्राम दृष्टि को किये हुए अपने स्थान से उठकर धीरे धीरे जाते हुए उस ब्राह्मण को देख भगवान् कपिलजी ने नवप्रसूता गौ जैसे अपने बच्चे के पीछे पीछे चलती है वैसे पीछे २ चलने लगे॥३६

निम्नोन्नतप्रदेशेषु गच्छन्तं तं यदृच्छया ॥
धावं धावं द्विजस्याग्रे स समं देशमानयत् ॥ ३७ ॥

जब अपनी इच्छा से परिभ्रमण करता हुवा वह ब्राह्मण कहीं नीचे खड्डे की तरफ जा पड़ता था या कहीं ऊंची जगह पर चढ़ने लगता था तो उसके आगे दौड़ दौड़ कर उसका हाथ पकड बराबर जमीन पर लातेथे क्योंकि अपने ध्यान में निमग्न वह ब्राह्मण आगे कुआ हो या पहाड सीधाही चलता था और आंखें ईश्वर को ही देखने में लगी रहती थी उससे संसारी काम तो लेता था ही नहीं इसलिये भक्तवत्सल भगवान् को उसे संभालना पडता था ॥ ३७ ॥

भुञ्जानं क्वापि तं विप्रं सदा मीलितलोचनम् ॥
मक्षिकारक्षणं कुर्वन् भोजयामास भृत्यवत् ॥ ३८ ॥

भगवान् भक्तों के खरीदे हुए दास हैं जो ईश्वर के सच्चे दास बनजाते हैं वे वास्तव में ईश्वर बनते हैं दास तो ईश्वर को ही बनना पड़ता है अब यहां ही देखिये जब कभी वह ब्राह्मण आंखों को बन्द किये हुवे भोजन करने बैठता था तो भगवान् दासों की तरह उसकी थाली से मक्खियों को हटाते हुए भोजन कराते थे ॥ ३८ ॥

पानीयं पिबतः क्वापि तन्निष्ठं यत्तृणादिकम् ॥
प्रहृत्य दूरीकुरुते हरिः स्वद्वत्सलः स्वयम् ॥ ३९ ॥

कभी पानी पीने लगता था तो जलपात्र में कोई घास फूस पड़ जाता था उसको निकालकर दूर करते थे क्योंकि भगवान्

भक्तवत्सल हैं और जिसकी इतनी सावधानी से सेवा कर
वह जानता भी नहीं कि मेरे सामने कौन है ? क्योंकि
आंखें तो बन्द होकर और ही कुछ देखरही हैं इतना अवकाश
कि इनको पहचाने। हजार सेवा करते रहें वह अपने ध्य
गम समझता क्या है ? वेतन तो पहले ही चुका दिया है ॥ ३९

कदाचित्तिष्ठतिक्वापि सन्मुनिः स्वस्थमानसः ॥
परमात्मारमाक्रान्तास्तदा विश्रमते मनाक् ॥ ४० ॥

जब यह मुनि कभी किसी जगह परमात्मा का ध्यान करता
स्वस्थ होकर बैठता था तो भगवान् रमाकान्त भी थोड़ा वि
करलेते थे नौकरी साधारण नहीं थी दिनरात पहरा देना था नौ
पकड़ी थी अगर ऐसे ही दो चार भगवान् और होते तो कुछ
की नौकरी करने के बाद विश्राम होता ऐसा विश्व और नौकर मिल
कठिन था ॥ ४० ॥

एवं पुनः सविश्रामो निर्ममोनिरहं मुनिः ॥
ध्यानमग्नः स्वनः काले संजहौ स्वकलेवरम् ॥ ४१ ॥

जब भगवान् को कुछ दिन के लिये अवकाश मिला क्योंकि इ
तरह अपने मन को करता हुआ निर्मम और निरहंकारी उस द्वि
श्रेष्ठ ध्यान में ध्यान करते करते स्वयं परवश होकर काल-प्राप्त होने
पर अपने शरीर को त्याग कर दिया ॥ ४१ ॥

नासक्ते विहायेह यथा [illegible] नदीं ॥
नासक्तैर्विह[illegible] [illegible] [illegible] ॥ ४२ ॥

[illegible] नहीं जाता [illegible] है [illegible] ने [illegible]
[illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] ॥
[illegible] ॥ ४२ ॥

तद्देहं स्वशृगालाद्या भक्षयामा सुरोजसाः ॥
ते प्रापुरुत्तमं जन्म विमुक्ताः पापयोनितः ॥ ४३ ॥

उसके मृत देह को कुत्ते शृगाल गृध काकादि नर मांसभक्षी जानवर खा गये और इस पवित्र मांस को खाने से वे भी पापयोनि से मुक्त होकर उत्तम जन्म पा गये ॥ ४३ ॥

विमानयानस्सङ्गच्छन् गोकर्णशिवदर्शने ॥
उल्ललङ्घतदस्थीनि कदाचिदलकापतिः ॥ ४४ ॥

उस ब्राह्मण के देहावसानानन्तर किसी समय अलकापति कुबेर अपने पुष्पकविमान पर बैठे हुए गोकर्णनाथ महादेव का दर्शन करने को आकाशमार्ग से जा रहे थे सो मार्ग में उस ब्राह्मण के देह की हड्डियां पडी थीं उसको उल्लंघन करदिया ॥ ४४ ॥

सविमानः पपाताशु पृथिव्यां नरवाहनः ॥
तदस्थिलंघनोद्भूतदोषादुत्तमदैवतम् ॥ ४५ ॥

कुबेर का वाहन पालकी भी है जिसको नरवाहन कहते हैं इसलिये यह विशेषण कुबेर का है। नरवाहन कुबेर उस अस्थि को लंघन करने के दोष से विमानसहित उसी समय पृथ्वी पर गिरगये क्योंकि वह अस्थि उत्तम दैवत थी अर्थात् एक परमतपस्वी की थी ॥ ४५ ॥

पतितश्चिन्तयामास तदापतनकारणम् ॥
पतनं येन संजातं तत्स्वयंनावबुद्धवान् ॥ ॥ ४६ ॥

जब कुबेर विमान के साथ जमीन पर आगये तो अपने गिरने का कारण सोचने लगे परन्तु जिस कारण से गिरे थे सो नहीं जान सके ॥ ४६ ॥

॥ ४१ ॥

स

क

एद

की

कठि

एद

व्रह

तरह अ

श्रेष्ठ मङ

पर अपने

नामरू

नामरू

जैसे

बनजाती है

जो प्राप्त हुआ

सरोवर में डाला। और मांस खानेवाले जानवरों ने अपनी पापयोनि से मुक्त होकर उत्तम जन्म पाया ॥ ५० ॥

गत्वा गोकर्णनिकटं दृष्ट्वा तच्चरणद्वयम् ॥
सर्वं वृत्तांतजातं स शंभुं पप्रच्छ विस्मयात् ॥ ५१ ॥

कुबेर ने गोकर्णनाथ के निकट जा उनके चरणों की वन्दना कर रास्ते की सब कथा आश्चर्य के साथ भगवान् शंकरजी से कही और इसका कारण पूछा ॥ ५१ ॥

शंभु स्तस्मै यथावृत्तं कथयामास विस्तरात् ॥
सोपि श्रुत्वा मुदा युक्तश्चाययौ स्वालयं पुनः ॥ ५२ ॥

भगवान् शंभुदेव ने उस तीर्थ की और तपस्वी ब्राह्मण की सब कथा कह सुनाई सुनकर बड़े हर्ष के साथ अलकाधिपति अपने भवन को आये ॥ ५२ ॥

आगच्छत् स्वगृहं देवः सस्नौ तस्मिन्सरोवरे ॥
स्नात मात्रस्य तत्राशु कुष्टं नष्टमभूत्क्षणात् ॥ ५३ ॥

कुबेरदेव ने भी अपने घर को आते हुवे उस सरोवर में स्नान किया और स्नान करने के साथ ही बहुत दिनों से उनके शरीर में लगी हुई कुष्टव्याधि थी सो नष्ट हो गई और दिव्य देह हो गया ॥ ५३ ॥

इयं पंचेतिहासी मे पंचाननमुखाच्छ्रुता ॥
प्रीत्यर्थं कथिता तुभ्यं स्वकीयैः पंचभिर्मुखैः ॥ ५४ ॥

ये पांच इतिहास से संयुक्त कथा मैं ने अपने पिता पंचानन शिवजी के पांचों मुखों से सुनी थी सो तुम्हारी प्रीति के कारण तुमसे कही है ॥ ५४ ॥

यां श्रुत्वा श्रद्धया धीरो नरोयाति कृतार्थताम्॥
किंपुनः सेव्यमानः सन् सदासिद्धः सरोवरः॥ ५५॥

जिस कथा को बुद्धिमान मनुष्य श्रद्धापूर्वक सुनकर ही कृतार्थ होजाते हैं उस सिद्ध सरोवर का यदि सदा सेवन किया जाय तो फिर क्या! अर्थात् सब मनोरथ सफल होजायं॥ ५५॥

अत्रयद्दीयते मर्त्यैः स्वल्पंतन्मेरुताम्व्रजेत्॥
अत्र यत्क्रियते किञ्चित्तदक्षयफलंभवेत्॥ ५६॥

भगवान् स्कन्ददेव की कथा अगस्त्य ऋषि के प्रति समाप्त हुई। अब सूतजी शौनकादिकों से ग्रन्थोपसंहार में कहते हैं कि इस तीर्थ में रेणु तुल्य भी दान किया जाय तो मेरु के समान होता है और यहां जो तपस्यादि किये जाते हैं उनके अक्षय फल होते हैं॥ ५६॥

कृत्वाताम्रतुलामत्र दद्याद्रत्नतुलाफलम्॥
अत्र समान्यधेनोर्यद्दानं प्रकुरुते सुधीः॥ ५७॥
फलंतूभयतोमुख्यास्तस्यस्या दाशुनिश्चितम्॥
एकस्मिन्भोजिते विप्रे कोटिर्भवति भोजितः॥ ५८॥

इस तीर्थ में यदि ताम्रतुला का दान किया जाय तो रत्न के तुलादा का फल हो और यदि साधारण गौदान करे तो उभय मुखी गौदा करने का फल निश्चयपूर्वक और तत्काल ही मिले। तथा इस ती में एक ब्राह्मण को भोजन कराया जाय तो कोटि ब्राह्मणों के भो कराने का फल होता है॥ ५७, ५८॥

एवं सर्वमपि स्वल्पं भूरी भवति भेदतः॥
यस्ययस्येह देवस्य प्रासादं कारयेत्सुधीः॥ ५९॥
तस्य तस्यैव देवस्य समानत्वं सआप्नुयात्॥

इसी प्रकार सभी दान व्रत आदि थोड़ा भी यहां किया जाय तो तीर्थ के प्रबल माहात्म्य के वश बहुत होजाते है और विचारवान् मनुष्य यहां पर जिस जिस देवता के मन्दिर बनवाते हैं वह उसी उसी देवता की समानता को प्राप्त हो जाते हैं॥ ५९ ॥

शिलाभिः सेतुबन्धं यः कारयेद्धनवान्नरः॥
तत्तीर्थतुल्यमाहात्म्योजायते सध्रुवंभुवि॥ ६०॥

जो धनी पुरुष इस तीर्थ में प्रस्तर के शिलाओं से सेतु बन्धावे और सरोवर में सुख से स्नान करने वास्ते घाट बनवावे वह पृथ्वी में निश्चय रूप से तीर्थ के बराबर पूज्य हो जाता है॥ ६०॥

इति ते सर्वमाख्यातं मया शौनक पावनम्॥
तीर्थ रत्नस्य माहात्म्यं यतोनास्तिवरंपरम्॥ ६१॥

हे शौनक! यह पवित्र तीर्थमाहात्म्य मैंने तुम से कहा है। इसके उपरान्त इससे श्रेष्ठ और किसी तीर्थ के माहात्म्य नहीं है॥६१॥

इति कार्तिककापिलेययोर्महिमानं महनीयभापिनम्॥
प्रदहेदिह पातकं क्षणाच्छृणुते श्रावयतेच भक्तितः॥६२

यह कार्तिक मास और कापिलेय तीर्थ की महिमा पूज्य जनों की कही हुई है जो मनुष्य भक्ति पूर्वक सुनता है और सुनाता है वह क्षण मात्र में अपने पातकों को जला देता है॥ ६२॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे स्कन्दागस्त्यसम्वादे कपिलायतनमाहात्म्ये षष्ठमोऽसौ नाम अष्टमोऽध्यायः।

